"भीष्म साहनी के उपन्यासों में सामाजिकता"

(जवाहर लाल नेहरू विश्व-विद्यालय की एम. फिल. हिन्दी उपाधि हेतु
प्रस्तुत लघु शोध - प्रबन्ध)

प्रस्तुत-कर्त्री
कु० प्रवीण सेठ

शोध-निर्देशक
डॉ० बी० एम० चिन्तामणि

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहर लाल नेहरू विश्व विद्यालय
नई दिल्ली - ११००६७
१९८४

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
भारतीय भाषा केन्द्र

न्यू महरौली रोड
नयी दिल्ली - 110067

दिनांक 23-6-1984

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी प्रवीण सेठ द्वारा प्रस्तुत ''भीष्म साहनी के उपन्यासों में सामाजिकता'' शीर्षक लघु-शोध-प्रबंध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं हुआ है। यह सर्वथा मौलिक है।

3/7/84

(डा० नामवर सिंह)
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

3/7/84

(डा० बी० एम० चिन्तामणि)
निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

विषय-सूची

1-	प्राक्कथन		क - ग
2-	प्रथम अध्याय -	'झरोखे' : परंपरा एवं रीतिरिवाज और व्यक्ति का विकास	1 - 31
3-	द्वितीय अध्याय -	'कठियां' : मध्यवर्गीय जीवन का बिखराव	32 - 69
4-	तृतीय अध्याय -	'तमस' : मानवीय गरिमा और साम्प्रदायिकता	70 - 108
5-	चतुर्थ अध्याय -	'बसन्ती' : मजदूर वर्गीय नारी का उभरता नया चेहरा	109 - 139
6-	पंचम अध्याय -	विविध स्तरीय भाषा के गठन की कोशिश	140 - 151
7-	उपसंहार -		152 - 158
8-	परिशिष्ट-I -	साक्षात्कार	159 - 164
9-	परिशिष्ट-II -	अनुक्रमणिका	165 - 168

—

प्राक्कथन

सामाजिक वातावरण से अनुभूत यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति देते हुए साहित्यकार एक श्रेष्ठ कृति की सृष्टि करता है। 'उपन्यास' साहित्य की वह महत्त्वपूर्ण विधा है, जिसमें मानव-समाज के यथार्थ और सामाजिक मूल्यों का अंकन सहज, स्वाभाविक एवं विस्तृत रूप में व्यक्त होता है। आधुनिक उपन्यासकार अपने समाज और मानव-मन से गहरी पहचान रखता है और जीवन की वास्तविकताओं को पाठक के समक्ष रखना अपना दायित्व मानता है। प्रेमचंद युग से कथा-साहित्य में जीवन के यथार्थ के अंकन पर बल दिया जाने लगा। इस परंपरा को प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने विकासमान रखा। जैनेंद्र, इलाचंद जोशी, यशपाल, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय, अमरकान्त, 'रेणु', रांगेय राघव एवं भीष्म साहनी आदि उपन्यासकार प्रेमचंद की परंपरा को लेकर चले और सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में उभर कर आयी। साठोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में भीष्म साहनी का नाम उल्लेखनीय है।

भीष्म साहनी यथार्थवादी रचनाकार हैं। इनकी रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से ध्वनित होता है कि जीवन के यथार्थ को वैचारिक सुदृढ़ आधार पर रखकर ही सफलतापूर्वक कलात्मक अभिव्यक्ति दी जा सकती है। भीष्म जी की प्रत्येक रचना उद्देश्यपरक एवं भारतीय समाज की समस्याओं को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करती है। वस्तुतः भीष्म साहनी का कथा-साहित्य समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करता है। मध्यवर्ग के यथार्थ को उन्होंने अपने साहित्य में सजीवतापूर्वक चित्रित किया है। इनकी निम्नलिखित प्रकाशित रचनाएँ हैं –

उपन्यास –'झरोखे', 'कड़ियाँ', 'तमस', 'बसंती'।

कहानी-संग्रह –'भाग्य-रेखा', 'पहला पाठ', 'भटकती राख', 'वांङ चू', 'पटरियाँ', 'शोभा-यात्रा' (एक बालोपयोगी कहानी संग्रह), 'निशाचर'।

नाटक – 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' ।

जीवनी– 'मेरे भाई बलराज' ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय में भीष्म साहनी के पहले उपन्यास 'झरोखे' का विवेचन किया गया है । इस उपन्यास में लेखक ने अपनी उन सही परंपराओं और निष्ठाओं का वर्णन किया है जिनसे कभी न केवल प्रभावित होते हैं बल्कि जीवन के गन्तव्य को उन्हीं झरोखों के माध्यम से देखते चलते हैं । यह उपन्यास बाल-मनोविज्ञान का एक सशक्त उदाहरण माना जा सकता है । भीष्म साहनी ने मध्यवर्गीय भारतीय परिवार में व्याप्त धार्मिक आडम्बरों, रूढ़ रीति-रिवाज़ व मिथ्या आदर्शों तथा घुट पड़ रहे नैतिक सिद्धान्तों के विरुद्ध सामाजिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है ।

दूसरे अध्याय में 'कड़ियाँ' उपन्यास का विश्लेषण करने की चेष्टा की गई है । भीष्म जी ने इस उपन्यास में मध्यवर्गीय संस्कार और संक्रमण का संघर्ष दर्शाया है । आज के युग में वैवाहिक संस्थाओं से उठ रहे लोगों के विश्वास एवं स्त्री-पुरुष संबंधों में बढ़ रहे तनावों तथा मानवमन के मानसिक द्वन्द्व का स्वाभाविक चित्रण हुआ है ।

तीसरे अध्याय में साम्प्रदायिकता की समस्या पर लिखे गए उपन्यास 'तमस' का विवेचन करने की कोशिश की है । भीष्म जी ने इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता से उत्पन्न विभीषिका का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है । देश-विभाजन से पूर्व राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का भी पूर्ण तटस्थता के साथ लेखक ने वर्णन किया है ।

चौथे अध्याय में 'बसन्ती' उपन्यास का विवेचन करने का प्रयास किया गया है । भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में मजदूर-वर्ग की समस्याओं को प्रस्तुत किया है । इसी वर्ग की एक युवती बसन्ती की विडम्बनापूर्ण जीवन-

कथा कही गई है । बसन्ती जीवन की कठिनाईयों व समाज की रूढ़िग्रस्त रीति-रिवाजों के विरुद्ध संघर्षरत रहती है किन्तु भावुकता के समक्ष पराजित यह युवती कभी भी अपनी जिजीविषा को मिटने नहीं देती । बसन्ती के रूप में लेखक ने एक अनूठे चरित्र की सृष्टि की है ।

भीष्म जी ने अपने उपन्यासों में समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं का उल्लेख सशक्त एवं स्वाभाविक भाषा में किया है । पाँचवें अध्याय में भीष्म साहनी के उपन्यासों में विविध स्तरीय भाषा पर एक दृष्टि डाली गई है ।

उपसंहार में लघु-शोध-प्रबंध के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है ।

अन्त में परिशिष्ट में दिये 'साक्षात्कार' में भीष्म जी से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किये गए हैं । 'साक्षात्कार' में भीष्म साहनी ने अपनी रचनाओं के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं ।

मेरा यह लघु-शोध-प्रबंध डा० बी० एम० चिन्तामणि के सहयोग एवं कुशल निर्देशन में सम्पन्न हो सका । उपन्यासकार भीष्म साहनी के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ कि उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे प्रश्नों का समाधान किया । अन्त में श्री राजेन्द्र शर्मा एवं डा० रवीन्द्र कुमार सेठ से मिले सहयोग एवं मित्र-जनों द्वारा समय-समय पर मिले सुझावों के लिए भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ ।

प्रवीण सेठ

—

पहला अध्याय

'झरोखे' : परम्परा एवं रीति-रिवाज और व्यक्ति का विकास

आज के युग में किसी भी साहित्यकार का सबसे बड़ा दायित्व तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करना है। डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के मतानुसार आधुनिक साहित्य में —''मानवमन और मानव जीवन का स्वाभाविक चित्रण होने लगा है।''[1] जीवन की सुन्दरता - असुन्दरता, रमणीयता व कटुता से पूर्ण यथार्थ को लेखन द्वारा पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना ही आधुनिक साहित्यकार का प्रमुख ध्येय है। ''जीवन और साहित्य का संबंध अन्योन्याश्रित है। जीवन की समस्त अव्यक्त विशेषताओं — भाव, विचार, कल्पना, सौन्दर्य और संवेदना का व्यक्त रूप ही साहित्य है, चाहे, उसका स्वरूप कुछ भी हो। साहित्य में समाज का चित्रण होता है। जिसमें व्यक्तिगत जीवन की सत्ता भी होती है।''[2] मानवमन के अन्तर्द्वन्द्व के साथ, बाह्य समाज में उसके संबंधों, उसके व्यक्तित्व में पैठती जा रही संघर्ष-रत जीवन की कटुता, बदलते मानवीय मूल्यों का अंकन और लोगों में आपसी वैचारिक विषमताओं, वैयक्तिक कुण्ठाओं इत्यादि का वर्णन उपन्यासों में किया जाने लगा है। सन् '60 के बाद के उपन्यासों में जो यथार्थवाद और मनोविश्लेषण की प्रवृत्तियाँ प्रविष्ट हुई, वे अब अपने चरम रूप को उपन्यासों में ग्रहण करती जा रही हैं।

—''प्रेमचन्द -परवर्ती उपन्यासों में मनोविश्लेषण तथा यथार्थवाद की प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से मिलती हैं। आधुनिक युग को पश्चिम के दो

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ0 258

2- हिन्दी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव - डा0 शंकरलाल जायसवाल-पृ07

मनीषियों (फ्रायड एवं मार्क्स) ने विशेष प्रभावित किया है। उनके व्यष्टि एवं समष्टि गत जीवन-पद्धति के विवेचन-विश्लेषण ने विश्व-भर के साहित्यकारों की चिन्तनधारा को प्रभावित किया है।''[1] किन्तु आधुनिक साहित्यकार इन दोनों मनीषियों से प्रभावित होकर उनके विचारों का अंधानुकरण का विवेचन-विश्लेषण मात्र नहीं करते अपितु जीवन के अनुभवों को यथार्थ की पृष्ठभूमि पर रख कर, यथार्थलोक के पात्रों के माध्यम से सशक्त भाषा द्वारा जीवन की कड़वी आम सच्चाईयों को कृतिबद्ध कर प्रस्तुत करते हैं।

साहित्य को अतिशय कल्पनावादिता से दूर कर, जीवन की वास्तविकताओं के बीच प्रतिष्ठित करने वाले साहित्यकार भीष्म साहनी ने आत्मकथात्मक शैली में, अपने बचपन से युवावस्था तक पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश में जो अनुभव संचित किये उनका अंकन 'झरोखे' में किया है। —'' विस्मृति की अंधेरी खोह में पड़े अतीत के चित्रों के अंश, कागज़ के पुर्जों की तरह कभी-कभी उड़ने लगते हैं। दो-एक पुर्जे जुड़ जाएँ तो एक तसवीर-सी उभरती जान पड़ती है। ...... क्या जीवन की गति-विधि को सूत्रबद्ध करने वाले कोई तन्तु हुआ भी करते हैं या नियमितता की भूखी हमारी कल्पना ही उन्हें कोई सुसंगत रूप देने की चेष्टा करती रहती है?''[2]

लेखन की 'कल्पनागत चेष्टा' या 'जीवन की गति-विधि को सूत्रबद्ध करने वाले तन्तु' जिन्दगी के कुछेक झरोखे खोलने लगते हैं। इन्हीं झरोखों में झांकने के प्रयास कई आधुनिक उपन्यासकारों ने किये हैं, जैसे — राहीमासूम रजा,

---

1- हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग — डा० मंजुलता सिंह- पृ० 180

2- झरोखे — भीष्म साहनी —पृ० 7

अजीत कौर, मोहन राकेश, कृष्ण बलदेव वैद, मन्नू भण्डारी आदि । अपने जीवन के मीठे कड़वे-कसैले अनुभवों का अंकन जब लेखक करने लगता है तो तमाम बन्धनों को तोड़ अपनी भोगी सच्चाईयों का बयान करता जाता है । बचपन की मासूमियत, शरारत, नासमझी, किशोरावस्था का अल्हड़पन, मानसिक एवं शारीरिक परिवर्तनों से उत्पन्न परेशानियाँ, युवावस्था की मस्ती, जीवन में उत्पन्न समस्याओं से संघर्ष, प्रेम, रोजगार की खोज और भी बहुत कुछ । ऐसी घटनाएँ व प्रसंग जो व्यक्तित्व एवं जीवन को प्रभावित करते हैं, ऐसी वस्तुएँ और ऐसे स्थल जो भुलाये नहीं जा सकते । इस प्रकार के अनुभवों का वर्णन, जो जीवन का वास्तविक स्वरूप तो दिखाते ही हैं, साथ ही जीवन को नई दिशा भी देते हैं, अत्यन्त स्वाभाविक रूप से भीष्म साहनी ने 'झरोखे' में प्रस्तुत किया है । एक मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार के सबसे छोटे सदस्य, एक बालक अपने समाज एवं परिवार से जो ग्रहण करता है उसका प्रभाव उसके भावी व्यक्तित्व पर पड़ता है । अपने समाज से मिले संस्कारों, धार्मिक आडम्बरादि एवं नैतिकता बद्ध वातावरण से गृहित अनुभवों से जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण निर्मित होता है, उसी को लेकर व्यक्ति जीवन में अग्रसर होता है ।

लेखक ने अपने जीवन के प्रथम चरण, बचपन के अविस्मरणीय क्षणों का स्वाभाविक अंकन 'झरोखे' में प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास रचना के पीछे भीष्म साहनी का उद्देश्य उन्हीं के शब्दों में — ''बचपन का यह लम्बा चौड़ा ब्यौरा आखिर किस काम का ? शायद इससे अपने आपको समझने में मदद मिलती है । यह एक तरह से उन तन्तुओं की खोज भी है जिससे संवेदन रूप लेता है, क्योंकि संवेदन कहीं न कहीं बचपन में ही जन्म लेकर उसी खाद में से अपना पोषण ग्रहण करती है ।''[1]

1- भीष्म साहनी — व्यक्ति और रचना— पृ० 55

पारिवारिक व्यक्तित्व की रचना समाज की चार दीवारी में बंध कर होती है। परिवार अथवा उसका एक-एक सदस्य कुछ नियमों और बंधनों में बंधा होता है, जो समाज द्वारा जीवन को संवारने के उद्देश्य से स्थापित किये जाते हैं। इन बंधनों को पोषित करते हैं, आपसी भावात्मक संबंध। किसी भी बच्चे पर उसके परिवार के वातावरण, आचार-विचार, संस्कार, धार्मिक आडम्बरों का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। — ''परिवार बालक पर सांस्कृतिक प्रभाव डालने वाली एक मौलिक समिति है तथा पारिवारिक परंपरा बालक को उसके प्रति प्रारम्भिक व्यवहार, प्रतिमान तथा आचरण का स्तर प्रदान करती है।''[1]

'झरोखे' में जिस मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण हुआ है, वह धार्मिक एवं नैतिक दृढ़ता के साथ मानवता के आदर्शों का पालन करने में विश्वास रखता है। उपन्यास के आरम्भ में सभी पारिवारिक सदस्य एक-दूसरे से भावात्मक रूप से जुड़े हुए एवं एक-दूसरे के आश्रित रहते हैं। किन्तु युगदृष्टि के परिवर्तन के साथ-साथ भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का प्रवेश होने पर पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों की स्थापना होने लगती है। ''पारिवारिक मान्यताएँ निःसंदेह जीवन के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, जिसका चित्रण भीष्म साहनी के लघु उपन्यास 'झरोखे' में भी हुआ है। ..... एक छत के नीचे रहते हुए सब की राहें अलग-अलग हो सकती हैं, यही 'झरोखे' के कथानक में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। जीवन का दृष्टिकोण परिवर्तित होने से मान्यताओं में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।''[2] जीवन की उन सच्चाईयों और अविस्मरणीय घटनाओं का चित्रण उपन्यासकार ने इस उपन्यास में किया है जो जीवन के प्रति नयी दृष्टि और जीवन को सही रूप में देखने की क्षमता प्रदान करती है।

1- The Family - Burgess Locke - p. 212 (1950)

2- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि- डा० स्वर्णलता, पृ० 59

बाल्यकाल एक प्रकार का शिक्षण काल होता है। व्यक्ति के भावी जीवन की पृष्ठभूमि इसी दौरान तैयार होती है। बचपन में जैसा संस्कार और परिवेश बच्चे को मिलता है उसी के अनुरूप उसका जीवन के प्रति नज़रिया बनता जाता है।

'शरीरि' में वर्णित परिवार कुछ आदर्श-जीवन-मूल्य लेकर चलता है और धार्मिक क्रिया-कलापों का पूर्ण निष्ठा एवं कट्टरता से पालन करता है। परिवार में माता-पिता, दो लड़के, दो लड़कियाँ और एक नौकर सदस्यों के रूप में है। छोटा लड़का इस उपन्यास का नायक है। स्वयं उपन्यासकार ने अपने बचपन को आत्मकथात्मक शैली में उपन्यास में प्रस्तुत किया है। बचपन से युवावस्था तक की अपनी जीवन-यात्रा के महत्वपूर्ण वृत्तान्तों के द्वारा अपने अनुभवों को पाठकों के समक्ष रखा है। किसी भी बालक के जीवन में जो कठिनाईयाँ और समस्याएँ उपस्थित होती हैं, बच्चा उनसे जिस प्रकार परेशान और उलझा रहता है उसी प्रकार 'शरीरि' का नायक भी परेशान रहता है। उसे पाप-पुण्य के झमेले, माता-पिता के झगड़े, गली में मजीरा बजाने वाले फकीर का भय भी उसे हरदम त्रस्त किये रहता है। बच्चा अपने भाई बलदेव की तरह आर्यवीर बनना चाहता है, मनोहर की बहन के साथ खेलना चाहता है, अपनी बीमारी से परेशान रहता है। हर वक्त माँ की गोद में सिर रखकर लेटना उसे पसंद है। माँ के गाये हुए विराग-गीत उसे सुनने पड़ते हैं। बहनों के हँसी-मज़ाक और तुलसी की बेवकूफी में उसे मज़ा आता है। भाई और पिता को वह अपने जीवन का आदर्श मानता है। पिता से डरता है लेकिन आदर भी बहुत करता है। घर में सबसे छोटा होने के कारण सबका लाड़ला भी है। — ''पिता केन्द्र हैं, वे बच्चों को मंत्र, संध्या-पूजा, हवन के लिए प्रेरित करते हैं। भाई और बहनें सभी प्राचीन नैतिक बंधनों में बंधे हैं, तथा इस बन्धनों को अनुशासन माना जाता है।

एक ऐसा अनुशासन जिसमें उन्मुक्त होकर हँसना भी अशिष्टता है, कदम-कदम पर पाबंदियाँ लगी हैं।''[1] माँ मोतीराम का बारह मासा गाती है तो पिता उसे डाँट देते हैं, उनका कहना है कि —''ये निराशा के गीत हैं, बच्चों को अच्छे-अच्छे आशा के गीत सुनाने चाहिए। इनके कान में वेद-मंत्र पड़ने चाहिए। तू विराग के गीत ले बैठती है। शाम के वक्त ये गीत गाओ तो बच्चों के दिल पर बुरा असर पड़ता है।''[2] माँ और पिता के वैचारिक वैषम्य से कई बार दोनों के बीच झगड़ा हो जाता है। किन्तु फिर कुछ समय बाद सब सामान्य भी हो जाता है। बच्चे को इस प्रकार के झगड़े से डर लगता है किन्तु साथ ही उसके ज़हन में एक निश्चिन्तता का भाव भी रहता है कि सब ठीक हो जाएगा। पिता का बच्चों के हँसने और छत पर जाने से रोकना और आर्य-समाजी नियमों और नैतिक आदर्शों का कट्टरता से पालन करना इत्यादि द्वारा लेखक ने परिवेश-गत नैतिक शिष्टाचार का संकेत किया है।

परिवार में प्रत्येक सदस्य को नैतिक शिष्टाचार का पालन करना पड़ता है। दोनों भाइयों को पण्डित जी पढ़ाने आते हैं और सिखाते हैं कि 'बड़ों का आदर करो, गाली नहीं देनी चाहिए। सच बोलो। सदाचारी बनो। सभ्यता से बात करो। आदि आदि।

''भाई-भाई से द्वेष नहीं करो, बहिन-बहिन से द्वेष नहीं करो।''[3]

1- भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना – प्रभा दीक्षित – पृ0 113

2- झरोखे – पृ0 13

3- झरोखे – पृ0 35

x x x

''सदा पन जीवन, सजावट मृत्यु है
सदाचार जीवन, दुराचार मृत्यु है।''[1]

भारतीय परिवार में बचपन से ही बच्चे को संस्कार घुट्टी में घोलकर पिलाये जाते हैं। बच्चे को पाप-पुण्य का भय दिखाकर उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं इन बातों के निर्देश दे दिये जाते हैं। बच्चा भयवश इन सब बातों का पालन करता रहता है। 'झरोखे' में बच्चा चूंकि अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य की सही जानकारी नहीं रखता। जो जानता है अपने अनुभवों द्वारा और वह भी आधा-अधूरा। पण्डित जी की बतायी सदाचार एवं दुराचार की परिभाषाएं उसके पल्ले नहीं पड़ती अपितु जो बाई करता है वही वह भी करना उचित समझता है, क्योंकि वह बाई की तरह ही तेजस्वी और वीर बनना चाहता है। गाली देना क्यों बुरा है बच्चा नहीं जानता, गाली देता है तो माँ उसे सजा देती है, ऐसा करने से मना करती है किन्तु बच्चा जो देखता और सुनता है उनका अनुकरण करता है, जो स्वाभाविक ही है। घर में पण्डित जी पढ़ाने आते हैं। लेकिन पढ़ाने से ज्यादा उनका ध्यान अपनी पेट-पूजा की ओर अधिक है। पण्डित जी के क्रिया-कलाप देखकर बच्चा हैरान है। अपने को आदर्श रूप में रखने वाले और आदर्श एवं नैतिकता की शिक्षा देने वाले स्वयं वास्तव में क्या हैं, उसका संकेत व्यंग्यात्मक रूप से लेखक ने यहाँ किया है। — ''पण्डित जी घुट-घुट करके लस्सी पी रहे हैं। मेरी आँख उनके गले में उठते-गिरते टेंटुए पर लगी है और मैं एक टक उसे देखे जा रहा हूँ। पण्डित जी बड़े भाग्यवान हैं उनके पास इतना बड़ा टेंटुआ है। मेरे पास नहीं है। पर बाई के पास भी तो नहीं है, यह जानकर मुझे सन्तोष होता है। टेंटुआ बराबर ऊपर-नीचे चल रहा है।''[2]

1- झरोखे- पृ० 36

2- झरोखे - पृ० 38

अपने से बड़ों का अनुसरण करने की आदत अक्सर पांच-छः साल के बच्चे में देखी जाती है। जो उसके बड़े बहन-भाई करते हैं उसी को वह दोहराता है। यही सोचकर कि बड़े जो कह या कर रहे हैं, वह उचित ही होगा। किन्तु वैसा करने पर उसे जो अनुभव प्राप्त होता है उससे उसका ज्ञान बढ़ता ही है।

''पर मेरी आँखें पण्डित जी के टेंटुए से हटकर उनके चौड़े नथुने पर चली गई हैं जिसके पीछे उनकी नाक की हड्डी बिलकुल बैठी हुई है। सहसा मैं चहक कर पूछता हूँ - ''पण्डित जी, आपके नाक पर से रेलगाड़ी गुजरी थी।''

लस्सी का गिलास हवा में रुक गया है। पण्डित जी अवाक मेरे मुँह की ओर देखे जा रहे हैं —''क्या कहा ?'' वह कहते हैं और उनकी छोटी-छोटी आँखें फैलकर फिर से बड़ी हो जाती हैं।

''आपके नाक पर से रेलगाड़ी गुजरी थी, बहिन कहती है, रेलगाड़ी गुजरी थी।''

''चल बुद्धू।'' वह कह कर कुर्सी की पीठ के साथ अपनी पीठ सटा लेते हैं।

''चल बुद्धू।'' मैं दोहरा देता हूँ।[1]

पण्डित जी मेरी ओर झुक आये हैं और हाथ बढ़ाकर मेरा बायाँ कान पकड़ लिया है और उसे धीरे-धीरे मसलने लगे हैं। पहले तो मैं हँसता रहता हूँ, फिर सहसा चीख उठता हूँ। पण्डित जी सदा ही कान पकड़ कर पहले उसे सहलाते हैं फिर धीरे-धीरे मलने और मसलने लगते हैं, फिर सहसा उसमें चकोटी काटते हैं जिससे मेरी चीख निकल जाती है।

''गुरू को ऐसी बातें नहीं कहते, समझे ? यह भी दुराचार है।''

1- हाविं - पृ० 40

पण्डित जी द्वारा वह 'पापी' और 'बुरा लड़का' करार दिया जाता है। माँ मुँह में 'मिट्टी' डाल कर सज़ा देती है और बच्चा अपने आपको एक बहुत बड़ा अपराधी मानकर मन में कुण्ठाएँ पाल लेता है। मानसिक रूप से अस्वस्थ होने के कारण और दूसरा मानसिक रूप से कुण्ठाग्रस्त होने पर बच्चे का व्यक्तित्व समुचित रूप से विकास की ओर अग्रसर नहीं हो पाता। उस पर अपने से बड़े लोगों के व्यक्तित्व हावी रहते हैं। संस्कारों के कठोर बन्धन व्यक्तित्व के विकास में कभी-कभी ऐसी समस्याएँ उत्पन्न कर देते हैं कि उससे व्यक्ति उलझ कर रह जाता है। बचपन में बच्चा जिन संस्कारों को ग्रहण करता है उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में वह जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण कायम करता है। परिग्रस्त संस्कारों का महत्व जीवन में नहीं रह पाता। बच्चे के मन में बेकार के वहम और संशय उत्पन्न कर यदि माता-पिता अपनी परंपरा से गृहित निरर्थक संस्कार एवं विचारों को उस पर थोपें, जिनका बच्चे के जीवन में कोई महत्व न हो, तो बच्चा भयग्रस्त और हीनभावना का शिकार हो ही जायेगा।

जीवन को देखने की एक संकुचित दृष्टि लेकर बदलती परिस्थितियों में चलना उचित नहीं रहता। युगानुकूल एवं परिस्थितियों के अनुरूप व्यक्ति यदि अपने विचारों को ढाल ले तो वह एक स्वस्थ एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व का स्वामी बन सकता है।

'झरोखे' में वर्णित परिवार अपनी परंपरा से प्राप्त मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं नैतिकता के साथ-साथ धार्मिक कट्टरता को लेकर चलता है। आर्य धर्म के नियमों को पूर्ण निष्ठा एवं श्रद्धा के साथ परिवार का प्रत्येक सदस्य पालन करता है। ''मध्यवर्गीय परिवार अपनी नैतिक परंपराओं के प्रति बेहद चिंतित होते हैं। भीष्म साहनी ने 'झरोखे' में उन तमाम परंपराओं और निष्ठाओं की समीक्षा की है जिनसे बच्चे न केवल प्रभावित होते हैं बल्कि अपने जीवन के गन्तव्य को उन्हीं 'झरोखों' के माध्यम से देखते चलते हैं। इतिहास-परंपरा और व्यक्ति

के आंतरिक संबंधों व संघर्षों का अत्यन्त सजीव चित्र इस उपन्यास में उभरा है।''[1] परिवार का वातावरण आर्यसमाजी होने के कारण वैदिक यज्ञ, हवन और संध्या मंत्र बोलने आदि को महत्व दिया गया है। परिवार के अन्य सदस्यों की तरह बच्चा भी इस सब धार्मिक क्रिया-कलापों से प्रभावित है एवं सक्रिय रूप से उनमें भाग लेता है।

''हमारे घर में सभी लोग संध्या करते हैं। सभी को संध्या के मंत्र याद हैं। दोनों बहिनें दिन के वक्त आपस में होड़ लगाती हैं कि कौन सारी संध्या मन्त्र जल्दी से जल्दी बोल सकती है।''[2]

x x x

कभी-कभी हमारे घर में साधु-महात्मा आते हैं। विशेष कर उस समय जब आर्य समाज का वार्षिकोत्सव घर में होता है। वार्षिकोत्सव में हम तीनों भाई खाकी रंग की कमीज और निक्करें पहनते हैं और लाइनों में लगे असंख्य जूतों की रखवाली करते हैं, बड़े-बड़े पंखे उठाकर जलसे में बैठे श्रोताओं को पंखा करते हैं।[3]

धार्मिक विचार व्यक्ति को जन्म से मृत्यु तक बांधे रखता है। भारतीय मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन के हर मोड़ पर धर्म को दृष्टि में रखकर, उसकी मान्यताओं को लेकर जीता है। बचपन से ही धर्म की जड़ें उसके मानस पटल में बहुत गहरी

1- प्रभा वर्मा -- भीष्म साहनी - व्यक्ति और रचना - पृ० 112

2- तमस - पृ० 42

3- तमस - पृ० 43

स्थान ग्रहण कर लेती है । -- ''हमारे नैतिक बोध पर धर्म का आवरण हावी रहता है फलस्वरूप हमारा नैतिक बोध किसी सेक्युलर अर्थ में मानवीय नहीं हो पाता मनुष्य अपने धार्मिक आचरण के वृत में सम्प्रदाय विशेष की आत्मनिष्ठ स्थितियों से प्रभावित होता है और होता यह है कि मनुष्य सही अर्थ में सामाजिक गुणों को ग्रहण नहीं कर पाता । उसके सामाजिक संबंध तथा मानवीय संबंध संकीर्ण अर्थ में जातीय परिपाटी के अधानुकृत रूप हुआ करते है ।''[1]

धर्म के संकीर्ण दायरे में कैद मानव सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों का ह्रास होते देखता रहता है । परिस्थितियों के अनुरूप समाज में परिवर्तन होते रहते हैं यदि व्यक्ति धर्म एवं नैतिकता के सीमित दायरों से बाहर निकल कर उन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार नहीं चलता तो उसके विकास में जड़ता आ जाती है । अक्सर मध्यवर्ग अपने धर्मभीरू स्वभाव के कारण परंपरा से चले आ रहे धार्मिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं कर पाता । धर्म के प्रति अपनी मानसिक जड़ता को तोड़ पाने में मध्यवर्ग का प्रयास कम ही रहता है । ईश्वर का भय और धर्म की रक्षा का झूठा दम्भ उसकी प्रगति में बाधक बन उपस्थित होते हैं । जीवन के प्रति आस्था का सिद्धान्त लेकर चलने वाले परिवार के मुखिया पिता कट्टर आर्यसमाजी हैं और चाहते हैं कि धर्म एवं नैतिकता का पालन उनका परिवार भी पूर्ण कट्टरता से उन्हीं की भांति करें।

आर्यसमाज की स्थापना सन् 1875 में हुई थी । स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना से हिन्दू धर्म में क्रान्ति लाने का प्रयास किया था । उन्होंने भारतीय संस्कृति, सभ्यता और वैदिक धर्म के पुनरुत्थान द्वारा देश वासियों में जागरूकता लाने का प्रयास किया । बहुदेववादी आडम्बर युक्त सनातन हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता एवं अन्धविश्वास का विरोध कर, एक ईश्वर के अस्तित्व की स्थापना और मूर्तिपूजा का खण्डन किया । हिन्दू धर्म के द्वार

1- प्रभा खरे - भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना -पृ० 12

सभी वर्गों के लोगों के लिए खोल दिये गये । भारतवासियों के उनके गौरवपूर्ण अतीत के प्रति उत्साहित कर राष्ट्रीय भावना के पुष्ट बनाने में आर्य-समाज का योगदान महत्वपूर्ण रहा । युगानुकूल इस धर्म का प्रभाव लोगों के मनःस्थल पर पड़ा और पूर्ण श्रद्धा के साथ इसे ग्रहण की किया गया । लेकिन धीरे-धीरे धर्म के प्रति अतिवादी प्रवृत्तियां इस धर्म में प्रवृष्ट होने लगी तथा लोगों द्वारा अनुचित परंपरा-गत रूढ़ियों का पालन भी किया जाने लगा ।

सन् 1910-15 के आस-पास आर्य-समाज में दुर्व्यवस्था आ जाने से धन लोलुपता और साम्प्रदायिकता जैसे अराजकतावादी तत्व अपना कुप्रभाव डालने लगे थे । धर्म के प्रति अंधविश्वास और अति श्रद्धा व्यक्ति के विवेक शून्य कर देती है । उसकी विचार-धारा संकीर्ण हो जाती है तथा धर्म उस पर हावी होने लगता है । मन अशांत है तो प्राणायाम करो ; जाप करो और नियमों - उपनियमों का पालन करो इत्यादि निरर्थक कार्यों में व्यक्ति की शक्ति का दुरुपयोग आरंभ हो जाता है । आर्य समाजी धार्मिक कट्टरता के परिवेश में रहनेवाला बच्चा स्वतन्त्र मनोवृत्ति का नहीं रह पाता । नैतिक एवं धार्मिक क्रिया-कलापों के बीच उसकी मानसिकता बंध जाती है । वह अक्सर 'पाप-पुण्य', 'ईश्वर क्या है', 'कैसा होता है', आर्य वीर कैसे बना जा सकता है आदि प्रश्नों में उलझा रहता है । उसका ज्ञानक्षेत्र सीमित है । उसमें अधिकांशतः कल्पना की प्रमुखता है । जीवन उसके लिए अनबूझ पहेली है जिसमें वह उलझ कर रह जाता है । ऐसे उलझाव अक्सर बचपन में सभी बच्चों के साथ रहते हैं । लेखक के बचपन में जो प्रश्न और समस्याएं परेशान किये रहती थीं वह अधिकांशतः मध्यवर्गीय परिवार के बच्चों की रहती है जिन्हें वे सुलझाना चाहते हैं । उसके विषय में पूर्ण जानकारी चाहते हैं । बच्चा धर्म और नीति की बातें सुन कर उनके अनुसार अनुसरण अवश्य करता है किन्तु उसके भीतर जिज्ञासाएं बनी रहती है ।

-''हेली के बाद मैं सकुचाता हुआ उसके पास जा पहुँचता हूँ —
''आपने भगवान को देखा है ?''

मैं धीरे से पूछता हूँ । मुझे विश्वास है कि संसार में यदि किसी ने भगवान को देखा है तो इसने जरूर देखा होगा ।

वह मेरी ओर हैरान होकर देखता है फिर धीरे से बड़े आत्म-विश्वास के साथ कहता है — '' एक बार देखा था ।''

''मैं अवाक् उसके चेहरे की ओर देख रहा हूँ ।''

''एक दिन मैं संध्या कर रहा था तो मेरी आँखों के सामने रोशनी-ही-रोशनी फैल गई ।''

मैं सुनते ही मन मसोस कर रह जाता हूँ ।

''तुम्हें कभी रोशनी नज़र आई है ?''

टूटे दिल से मैं सिर हिला देता हूँ ।

''पापियों को नज़र नहीं आती ।'' वह निश्चय के साथ सिर हिला कर कहता है ।''[1]

बच्चा इस प्रकार की भ्रामक बातों में उलझ कर रह जाता है ।

भीष्म साहनी का यह उपन्यास बाल-मनोविज्ञान का एक सशक्त उदाहरण है । उपन्यास में ''बाल-मनोविज्ञान के परिस्थिति-गत विकास की भूमिका यथार्थ है । संस्कार-जनित पाप-बोध के कुपरिणाम कितने भयावह होते हैं, इसका सजीव चित्रण 'झरोखे' उपन्यास में हुआ है ।''[2] नैतिकता के प्रति अत्यधिक

1- झरोखे - पृ0 79

2- राजेश्वर सक्सेना - भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना - पृ0 84

चिन्तित इस परिवार का बालक हीन भावनाओं से ग्रस्त हो जाता है । उसमें अस्थिरता एवं व्याकुलता बनी रहती है व अक्सर बीमार रहने के कारण अपने आप को कमज़ोर और भाई जैसा आर्यवीर न बन पाने के कारण अपने को हीन मानता है । हीन भाव की प्रबलता के कारण दिवास्वप्नदर्शी के लक्षण उसमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं । अधिकांशतः बच्चे स्वयं को असमर्थ पाकर और - ''वास्तविक जगत् की असफलता से उबकर कल्पना-संसार का निर्माण करते हैं ।''[1] इस निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया जन्य विचारों की दुनिया में खोकर सुख का अनुभव करते हैं । 'झरोखे' में बच्चा कुछ न कुछ कर पाने के कारण और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर हताशा और आक्रोश के आँसुओं में बहकर अथवा अपने बनाये स्वप्नलोक में खोकर राहत पाता है ।

''आँसुओं के बीच मेरी आँख फिर छत पर टिक गई है । दो खिड़कियों के बीच दाढ़ी वाले राजा का चेहरा अब दिखाई नहीं देता, उसके आगे भागते घोड़े की शक्ल भी दिखाई नहीं देती । रेखापुंज तैरता हुआ फिर आँखों के सामने आ गया है, वह फिर फैलकर बड़ा होने लगा है, फैलता जाता है । जब मेरे मुँह से 'हाय' या 'उँह' का शब्द निकलेगा और अन्त में एक काला धब्बा बनकर रह जाएगा और हवा में तैरने लगेगा .....।''[2]

बच्चे के संवेग क्षणिक होते हैं । ये पल-पल बदलते रहते हैं । बड़े भाई बलदेव को वह अपना आदर्श मानता है । लेकिन कभी वह ईर्ष्या का विषय भी बनता है क्योंकि वह भाई आर्यवीर नहीं बन सकता, मनोहर की बहन के साथ खेल नहीं सकता, बीमार रहने के कारण तीर-कमान का खेल देखने गुरुकुल समाज नहीं जा सकता । किन्तु भाई के व्यक्तित्व से पूर्णतः प्रभावित रहता है ।

1- बाल मनोविज्ञान - श्री जगदानन्द पाण्डेय -पृ० 25।

2- झरोखे -पृ० 17

—''मैं मंत्र मुग्ध-सा भाई के चेहरे की ओर देखे जा रहा हूँ । कोयला पीस कर बनाई गई स्याही से भाई ने मूँछ बना रखी हैं, कोने पर से उसका कतरा बहकर ठुड्डी की ओर जाने लगा है, लेकिन भाई अभी उसे ठीक कर लेगा । कोई काम नहीं, जो भाई नहीं कर सकता ।''[1]

इसी प्रकार बच्चे को माता-पिता कभी मित्र लगते हैं तो दूसरे ही क्षण शत्रु लगने लगते हैं । भाई के साथ गुरुकुल समाज में तीर-कमान का खेल देखने जाना चाहता है, लेकिन उसकी बीमारी के कारण माँ उसे जाने नहीं देती । ''देखो जी, कोई राह-रास्ते की बात किया करो । बीमार बच्चे को भेज दूँ ? इसका माथा तप रहा है ।''

अभी तक माँ मेरी मित्र थी और पिता जी शत्रु । अब पिता जी मित्र हैं और माँ शत्रु बनती जा रही है ।''[2]

बाल्यकाल में बच्चे का ज्ञान और सामाजिक दायरा अत्यन्त सीमित होता है । उसे अपने परिवार और आस-पास पड़ोस के बारे में ही थोड़ा-बहुत मालूम होता है । — ''मेरी दुनिया चरनी से शुरू होकर और अतर सिंह हलवाई की दुकान तक पहुँचकर खत्म हो जाती है जहाँ सड़क के किनारे कुछ लोग दरी बिछाकर कौड़ियों से चौपड़ खेलते हैं । इसके आगे क्या है, मैं कुछ नहीं जानता ।''[3]

मेरी रेडविक के अनुसार — ''ज्यों ही बालक घर की सुरक्षित चारदीवारी से निकल कर जरा बाहर के विशाल क्षेत्र में पग धरता है, तो उसे

1- झरोखे – पृ0 72

2- झरोखे – पृ0 16

3- झरोखे – पृ0-23

कई नई परिस्थितियों का सामना करना होता है, अनेक प्रकार की नई-नई कठिनाइयों से मुठभेड़ होती है। इस सब से वह विविध प्रकार से प्रभावित भी होता है। बालक अपनी इन तकलीफों का मुआवज़ा बीमारी में, कल्पना सृष्टि के मीठे सपनों में प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इन सब बातों का उसके भावी जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए इनका बहुत महत्व भी है।''[1]

'झरोखे' का नायक जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है उसे कई बातों का ज्ञान होता है। उसकी दुनिया अपने घर की चार-दीवारी तक ही सीमित नहीं रह जाती। वह घर के बाहर की दुनिया व बाहर के लोगों के बारे में जानने लगता है। वह गुरुकुल जाता है। तांगे के पायदान पर चढ़ कर शहर की गलियों में घूमता फिरता है। परिवार के अन्य सदस्यों व अपने से बड़ों पर वह अब इतना आश्रित नहीं रह जाता। कई भ्रम और शंकाओं का समाधान उसे स्वयं के अनुभवों से प्राप्त होता चला जाता है। सीमित दायरा विस्तृत होता चला जाता है। कई प्रसंग और घटनाएं बहुत गहरा प्रभाव बच्चे के मनःस्थल पर डालती है। जो बच्चे को जीवन-पर्यन्त प्रभावित किये रहती है। उपन्यासकार भीष्म साहनी ने जिन प्रभावों को अपने बचपन एवं लड़कपन में गहराई से अनुभव किया उन्हीं को कथात्मक रूप में 'झरोखे' में अभिव्यक्ति देने की सफल चेष्टा की है।

आरंभ में बच्चे को अपने पिता का व्यक्तित्व अत्यन्त सशक्त एवं समर्थ जान पड़ता है। वह उनका आदर तो करता ही है साथ ही डरता भी है। पिता के आशावादी विचारों से प्रभावित रहता है। पिता की रौबदार

1- बचपन - मेरी चेडविक एस0आर0 रैन0 - अनु0 अमरनाथ विद्यालंकार-पृ05

आवाज़ और लम्बे चौड़े कद-काठी के कारण उन्हें दुनिया का सबल व्यक्ति मान कर चलता है। किन्तु जैसे-जैसे बच्चे का ज्ञान क्षेत्र विस्तृत होता है और बाहर की दुनिया से साक्षात्कार होता है, अपने अनुभवों से उसकी जिज्ञासाओं और भ्रमों का निवारण होता जाता है। पिता के विषय में बच्चा जो सोचता है एवं अनुभव करता है उसमें अन्तर आता जाता है, एक ऐसी घटना के द्वारा जिसमें पिता चोट खाकर, हारकर घर लौटते हैं।

''पिता जी की भी कोई उँगली मरोड़ सकता है, इसकी कल्पना कर पाना मेरे लिए कठिन है। घर में वह सबसे ऊँचे-लम्बे हैं और हमेशा डाँट कर बोलते हैं। पिता जी ने उसे डाँट क्यों नहीं दिया। डाँट देते तो वह अपने-आप उँगली छोड़ देता।''[1]

बच्चा जब अपने जीवन में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसके विचारों को आदर्श के रूप में लेकर चलता है और अपने जीवन का लक्ष्य उसी आदर्श के अनुरूप गढ़ने का प्रयास करता है। किन्तु उस आदर्श एवं सबल व्यक्तित्व में कहीं कोई कमी देखता है तो बच्चे के मन में उसके प्रति संशय उत्पन्न होने लगती है। 'खरोंच' में पिता का चोट खा कर घर आना बच्चे के मन में पिता के सबल व्यक्तित्व के भाव को खण्डित करता है। बच्चे के भ्रम का इस प्रकार टूटना बच्चे को मानसिक रूप से आहत करता है। वह सहम जाता है और दूसरे ही क्षण कावड़ी वाले के प्रति आक्रोश से भर उठता है —

''पिता जी पगले की तरह सिर झुकाए बैठे हैं। उनका चेहरा पीला पड़ जाता है। मैं सहमा-सहमा उनके चेहरे की ओर देखता रहता हूँ, पर मेरा मन उस अज्ञात आदमी के प्रति गुस्से से भर उठा है। मन चाहता है

1- खरोंच – पृ0 3।

भागकर जाऊं और उस आदमी को पीट दूं, उस के बाल पकड़ कर खींच दूं और वह चीखता रह जाय, उसकी पगड़ी ज़मीन पर फेंक दूं।''[1]

पिता के दुश्मन से बदला ले पाना उसके लिए संभव नहीं परन्तु जब तुलसी खीरे वाले को पीटकर तथा खीरे उठाकर धर लाता है तो बच्चे का आक्रोश शांत होता है। —''तुलसी मेरी नज़र में बहुत ऊंचा उठ गया है। वह मुझे बहुत बहादुर लगने लगा है। वह पिता जी के दुश्मन को पीट कर ही नहीं आया, उसके खीरे भी उठा लाया है।''[2]

भीष्म साहनी ने इस प्रसंग में बच्चे की मनःस्थिति का अत्यन्त सहज चित्रांकन किया है। क्रोधवश बच्चे का उत्तेजित होना, पिता के प्रति सहानुभूति, खोमचे वाले के प्रति आक्रोश, स्वयं कुछ न कर पाने की लाचारी और नौकर के कार्य से मिली संतुष्टि इन सब भावों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

पिता की मनःस्थिति को कई और समझ न पाने के कारण भी बच्चा अत्यन्त परेशान रहता है। पिता एक कट्टर आर्य समाजी एवं आदर्शवादी व्यक्ति है वह बेकार के वहमों, रूढ़ियों और दकियानूसी बातों को नहीं मानते, उनकी दृष्टि में अत्यन्त भावुक होना भी अनुचित है। किन्तु — '' क्या बोल जा रही है?'' पिता जी कमरे के बीचों-बीच रुक गये हैं। '' भगवान का शुक्र नहीं करती जो यह दिन आया है। तेरे बेटे का यज्ञोपवीत हुआ है।

1- झरोखे — पृ० 31

2- झरोखे — पृ० 34

पण्डित कौन तेरी जेब से पैसे ले गया है ? लोगों के ही तो पैसे थे, उन्हीं का दान था । ऐसे दिन शुभ-शुभ बोलते हैं, तेरे बेटे सलामत रहें ।''

माँ सहसा चुप हो जाती है । बुत की बुत बनी बैठी है । धीरे-धीरे माँ का चेहरा व्याकुल-सा लगने लगता है । शगुन अपशगुन की बात आज पिता जी कैसे करने लगे हैं । वह तो इन बातों को अंध-विश्वास कहा करते हैं । क्या माँ को चुप कराने के लिए ही पिता जी हमारी स्वास्थ्य का वास्ता डाल रहे हैं ?''[1]

यज्ञोपवीत में घटित इस घटना से बच्चा हैरान-परेशान हो जाता है । पिता की मनःस्थिति को समझ पाना बच्चे के लिए कठिन हो उठता है । पिता अक्सर माँ के साथ इस कारण उलझ जाते थे कि माँ दकियानूसी बातों में यकीन रखती है । और घर में अशान्ति का वातावरण बन जाता था ।पुरानी रीति-रिवाजों और बात-बात पर बच्चों के मंगल की, या सलामती की दुहाई देने वाली माँ ने यह समझ लिया था कि जिन बातों से झगड़ा हो उनको छोड़ देना ही बेहतर है । इस कारण उसने बेकार के 'वहम' और टोने-टोटके आदि करने बन्द कर दिये थे । -- ''रहने दो बहन, वह काम करने से क्या फायदा जिससे मर्दों के सिर हो ।''[2] किन्तु स्वयं पिता जब ऐसी दकियानूसी बातें करने लगते हैं तो बच्चे के मन में पिता के विचारों के प्रति संशय उत्पन्न होने लगता है । मध्यवर्गीय व्यक्ति अक्सर परिस्थितियों एवं भावुकता के समक्ष अपने आपको निर्बल पाता है और इसी कारण उसमें वैचारिक दृढ़ता की कमी दृष्टिगोचर होती है । आर्य-समाज धर्म की 'नवीन एवं आशावादी'

1- वही, पृ0 87

2- वही, पृ0 57

विचार-धारा को लेकर चलने वाले व लाख चेष्टा करने पर भी एक पिता होने के नाते वह भावुकता से बच नहीं पाते और साथ ही परंपरागत संस्कारों का प्रभाव भी उनके व्यक्तित्व में स्पष्ट झलकता है। ऐसे में बच्चे के लिए पिता को समझ पाने में असमर्थ होना स्वाभाविक ही है।

उपन्यासकार ने बाल्यकाल का अत्यन्त स्वाभाविक एवं सजीव चित्रांकन किया है। हिन्दी उपन्यासों में बाल-मनो-विज्ञान का इतना सहज वर्णन बहुत कम हुआ है। बच्चे द्वारा रचित कल्पना संसार, उसके क्षणिक संवेग और उसकी मानसिकता का भीष्म जी ने अपनी लेखनी द्वारा सशक्त चित्रांकन किया है।

भीष्म साहनी का जन्म सन् 1915 में रावल पिण्डी में हुआ था और उन्होंने अपने बचपन से युवावस्था के अविस्मरणीय प्रसंगों एवं घटनाओं का उल्लेख 'झरोखे' में किया है। सन् 1920 ई0 के पश्चात् देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का संकेत भी 'झरोखे' में वर्णित घटनाओं एवं प्रसंगों से मिलता है।

बच्चा जानता है कि वह हिन्दू है और मुहल्ले में रहने वाले पड़ोसी मुसलमान हैं। उनसे अलग हैं, हेय हैं, म्लेच्छ हैं। इस प्रकार की मानसिकता बच्चा अपने परिवार से ग्रहण करता है। साम्प्रदायिकता का प्रभाव, वह अपने वातावरण में पाता है।

''आज घर में हवन होगा। क्योंकि पड़ोस में रहने वाले म्लेच्छों ने बकरे की सिरी को भूना है।''[1]

बच्चे को यह भी स्पष्ट होता जाता है कि मुहल्ले के रहने वाले मुसलमानों और व्यापारी मुसलमानों में, जो व्यापार के लिए उसके पिता से

1- झरोखे – पृ0 46

मिलने आते हैं, अन्तर है।

''बापारी मुसलमान में और मुहल्ले के मुसलमान में बड़ा फर्क है। 'बापारी' मुसलमानों के साथ पिताजी हंस-हंस कर बातें करते हैं, उनकी ठुड्डी को हाथ लगाते हैं, उन्हें चाय पिलाते हैं, खाना खिलाते हैं। महल्ले के मुसलमान म्लेच्छ हैं, वे बच्चों की सिरी चुनते हैं, वे हिन्दुओं के खोमचे लूट लेते हैं और उनके बच्चे हरिक्या गीत गाते हैं, इसीलिए पिता जी उनके साथ हमें खेलने नहीं देते।''[1]

किन्तु फिर भी मुसलमान मुसलमान ही है, यह अवधारणा बनी रहती है। व्यापार की खातिर उसकी आव-भगत की जाती है। हिन्दू और मुसलमान में जो मानसिक अलगाव है, वह तो न जाने कितनी शताब्दियों तक अभी और बना रहेगा। उस अलगाव और एक-दूसरे में व्याप्त वैमनस्य कट्टर हिन्दुओं एवं मुसलमानों में सदैव बना रहता है। यही अलगाव 'शरीखे' में लेखक ने पाठकों के समक्ष रखा है।

''रसोईघर के बाहर एक आले में दो चीनी की प्लेटें, दो फूलदार प्याले और एक नमूने की चायदानी रखे रहते हैं। इनमें हम कभी भी खाना नहीं खाते। ये सदा वहीं पर पड़े रहते हैं। ये मुसलमान व्यापारियों के लिए हैं। इनमें मुसलमान व्यापारियों को खाना और चाय दी जाती है, और जब वे चले जाते हैं तो माँ इन्हें जलते अंगारों और गरम राख से साफ करती है और फिर इन्हें आले में रख देती है।''[2]

हिन्दू एवं मुसलमान के अन्तर के अतिरिक्त कस्बा गली-मुहल्ले में होने वाले क्रिया-कलाप, आस-पड़ोस में हो रहे झगड़े-फसाद, मुसलमानों के रहन-सहन,

---

1- शरीखे, पृ0 - 67

2- शरीखे, पृ0 66

O,152,3,N3,Sig(Y)
152M4
TH-1533

उनके आपसी झगड़े और वातावरण में एक प्रकार की असुरक्षा की भावना को अनुभव करता है। लेखक का बचपन रावलपिण्डी में गुजरा जो कि अब पाकिस्तान में है। पाकिस्तान बनने से पूर्व के वातावरण का साक्षात्कार लेखक ने किया है और बचपन से ही दोनों सम्प्रदायों के तनाव और एकदूसरे के प्रति संशय की भावना और भिन्नता को उन्होंने महसूस किया था। जिसका मात्र संकेत 'झरोखे' में किया गया है। बच्चे को माँ की बातों से और हिन्दुओं का मुसलमानों अथवा मुसलमानों का हिन्दुओं के प्रति व्यवहार से परिवेशगत असुरक्षा की भावना का अहसास होता है, किन्तु वह इसे स्पष्टतः समझ नहीं पाता।

""देखो जी, मेरे साथ क्यों झगड़ते हो। जवान लड़कियाँ हैं, घर में रोज झंझट पड़ते हैं। लफंगों का महल्ला है, तुम उन्हें लिख दो कि वैसाख में ब्याह कर दें।""[1]

× × ×

""मेरा मुर्दा देखोगी अगर बाहर गए तो, महल्ले में हर किसी से दुश्मनी लेते फिरते हो, यह बात अच्छी नहीं।""[2]

यज्ञोपवीत के अवसर पर बच्चे को धर्म के ठेकेदारों (ब्राह्मणों) की दशा और उनके प्रति, लोगों की दृष्टि में, कितनी श्रद्धा रह गई है इसका भी साक्षात्कार हो जाता है। यज्ञोपवीत बच्चे के लिए एक मनोरंजक खेल से ज्यादा कुछ नहीं। वह इसमें बहुत खुशी से भाग लेता है क्योंकि उसे धोती पहनने को मिली है और साथ ही सिर घुटा लेने से उसकी चोटी मोटी लगने लगी है। भिक्षा में मिले रुपये पूर्ण श्रद्धा के साथ गुरुदक्षिणा के रूप में दोनों भाई पण्डितजी को थमा देते हैं और पण्डित जी भी बिना भोजन किये रुपये समेट कर चलते

1- झरोखे - पृ० 89

2- झरोखे - पृ० 62

जाते हैं । माँ को पण्डित का इस प्रकार रुपये ले जाना बुरा लगता है । --
''क्या बक रहा है मैं भी सुनूँ । अवार जी पण्डित सब आठ-आठ आने लेते हैं । तुम आर्य समाजी लोगों को नई चालें सिखा रहे हो । जाने पच्चास ले गया है या सौ ले गया है । पूरे के पूरे दोनों रुमाल जेबों में ठूँस कर चला गया है । लोगों ने शर्म-हया ही बेच खाई है । मैं तो मुए से पूरे-के-पूरे पैसे वापस लूँगी । जायेगा कहाँ ।''[1]

मध्यवर्ग में अर्थाभाव के कारण धार्मिक क्रिया-कलाप और दान-दक्षिणा के प्रति यह रुख कोई आश्चर्य का विषय नहीं है । और फिर जिस धर्म में धन को महत्त्व दिया जाने लगे उसके प्रति लोगों के मन में श्रद्धा भी समाप्त होती जाती है, रह जाता है तो एक अनजाना भय अथवा कुछ मानसिक कुण्ठाएँ जिसके कारण ये कर्म-काण्ड किये जाते हैं । शिक्षा-प्रसार एवं प्रगतिशील विचारों के आगमन से हिंदू समाज में ब्राह्मणों एवं पण्डितों के लिए आदर-भाव पहले से बहुत कम रह गया है । मध्यवर्ग धर्म के शिकंजे में जकड़ा अवश्य हुआ है, किन्तु इसके प्रति श्रद्धायुक्त भक्ति का अभाव बढ़ता जा रहा है ।

आर्य-समाज धर्म में उत्पन्न हो रही कुव्यवस्था की ओर भी लेखक ने संकेत किया है । 'धर्मार्थ आर्य औषधालय' के वैद्य द्वारा तुलसी का शोषण और आर्य-समाजी पण्डितों की धन के प्रति बढ़ती लिप्सा आदि प्रसंग इस धर्म में उत्पन्न बुराईयों की ओर इशारा करते हैं ।

''मैं एक-एक से समझ लूँगा । मेरा भी नाम आत्मदर्शी है । यहाँ अंधेर मचा हुआ है । अखाड़ा खोला, वह बंद हो गया । गुरुकुल खोला, ब्रह्मचारी पच्चीस से तेरह रह गये, किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती । औषधालय खोला,

---

1- अरोबि - पृ0 86-87

वैद्य जी नौ-नौ बजे तक सोये रहते हैं । आर्यसमाज का रुपया बर्बाद हो रहा है । . . . . ."[1]

भीष्म साहनी ने दो पीढ़ियों के वैचारिक अन्तर को भी 'झरोखे' में प्रस्तुत किया है । एक वह पीढ़ी जो जीवन को एक निश्चित दायरे में देखती हुई अपने संचित अनुभवों को लेकर अपने भविष्य और अगली पीढ़ी के भविष्य की योजनाएँ बनाती है । यह पीढ़ी अपने परंपरागत संस्कारों से भावात्मक स्तर पर जुड़ी हुई है । नये को अपनाने में एक भय और हिचकिचाहट रखती है । नयी पीढ़ी आधुनिकता से प्रभावित एवं उसे ग्रहण करने में भावात्मक संबंधों को कम अहमियत देने लगी थी । समाज में हो रहे परिवर्तनों का, शिक्षा द्वारा, जितना भी परिचय यह नयी पीढ़ी पाती है उन्हीं परिवर्तनों के अनुरूप अपनी जीवन-दृष्टि को भी परिवर्तित करती चलती है । यह नयी पीढ़ी अपने को परिवार तक सीमित नहीं रखना चाहती, धार्मिक आडम्बरों एवं कठोर नैतिकता के बंधनों से मुक्ति चाहती है । अपने से पहली पीढ़ी की विचारधारा से असन्तुष्ट होकर नयी पीढ़ी या तो विद्रोह करती है, नहीं तो हीन भावनाओं और कुण्ठाओं का शिकार होती है । नयी पीढ़ी में इस प्रकार की प्रवृत्तियों का परिचय 'झरोखे' में दोनों भाइयों के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है । बड़ा भाई बलदेव स्वतंत्र मनोवृत्ति का व्यक्तित्व लिये हुए है और जीवन में सतत् अग्रसर रहता है । किसी प्रकार की भावुकता या कुण्ठाएं उसके जीवन-मार्ग में रुकावट उपस्थित नहीं करती । वह दृढ़ मानसिकता को लेकर जीवन के विकासशील रूप को प्रश्रय देता है । शारीरिक रूप से भी वह पूर्णतः समर्थ है । बचपन से ही उसमें विद्रोह करने की प्रवृत्तियाँ प्रकट होने लगी थीं । छोटे भाई की तरह डरा-सहमा व्यक्तित्व उसका नहीं है । वह गुरुकुल न जाकर स्कूल जाने की ज़िद पिता से करता है और यही

1- झरोखे - पृ0 122

से अपने विषय में स्वयं सोचने का आग्रह उसके जीवन में हो जाता है। --
"मैं नहीं पढ़ूंगा, मैं स्कूल में पढ़ूंगा।" भाई दफ्तर में खड़ा पिता जी की ओर देखता हुआ कह रहा है। मैंने भाई को इस मुद्रा में पहले कभी नहीं देखा। उसकी ठुड्डी आगे की ओर बढ़ी हुई है और वह एक टक पिता जी की ओर देखे जा रहा है और बिलकुल निश्चल खड़ा है।"[1]

बलदेव का विद्रोह यहीं तक सीमित नहीं है वह क्या करना चाहता है और क्या नहीं इसके लिए भी वह पूर्ण सजग एवं दृढ़ निश्चय लिये है। वह व्यापारी न बनकर नौकरी करना चाहता है और माता-पिता के लाख कहने पर भी वह अपने निश्चय से नहीं हटता। और सारी भावुकता को तिलांजलि देकर नौकरी करने शहर चला जाता है। छोटे भाई के व्यक्तित्व में दृढ़ता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। बौद्धिकता का प्रभाव भी उस पर इतना नहीं पड़ता कि भावात्मक संबंध तोड़कर वह अपनी इच्छानुकूल कुछ कर पाये। बचपन से ही हीन भावना और कुण्ठाओं से घिरे व्यक्तित्व का स्वामी यह बच्चा एक स्वतंत्र मनः स्थिति को लेकर नहीं चलता उस पर अपने संस्कारों और परिवार के अन्य सदस्यों के व्यक्तित्व का प्रभाव इतना अधिक है कि उसका व्यक्तित्व दबा-दबा सा रहता है। भाई के प्रगतिशील विचारों से वह प्रभावित भी है किन्तु साथ ही माता-पिता के प्रति स्नेह और भावुकता लिये भी है, ठीक इसी कारण भाई को आदर्श मानकर चलने वाला यह 'छोटा' बड़े भाई के नक्शेकदम पर नहीं चल पाता।

"मेरा दिल धक् से रह जाता है और भाई की ढिठाई पर गुस्सा आने लगता है। मैं आंख उठाकर भाई की ओर देखता हूं। भाई अविचल बैठा है।"[2]

1- सारंगि - पृ० 88

2- सारंगि - पृ० 146

बचपन में कैसा पाप-पुण्य, सदाचार - दुराचार का अर्थ समझ पाने में असफल रहता है । कक्षाओं के दमन और संस्कारों व नैतिकता की कट्टरता से पालन करने से जिन कुण्ठाओं से घिरा रहता है वे सब कुण्ठाएँ किशोरावस्था में ही रहे शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों के समय उसे और भी भय ग्रसित किये रहती है । उसे वीर्यपात की समस्या दिन-रात सताया करती है । वह भाई की तरह आर्यवीर न होकर पापी और बुरा है । ऐसी हीन भावना उसके मन में घर कर जाती है ।

''भाई के चेहरे पर रौनक है, जो एक सच्चे ब्रह्मचारी के चेहरे पर होती है, चमकती आँखें, गोरे-गोरे लाल-लाल गाल मैं सोचता हूँ, मेरा नैतिक पतन हो चुका है, इसी कारण मेरा चेहरा सफेद है और पीला है, और उस पर कोई रौनक नहीं ।''

''मुझे बताओ मैं क्या करूँ ?'' मैं व्याकुलसी आवाज़ में कहता हूँ ।''[1]

वह अपनी समस्या माता-पिता को बताता है तो उसे 'अमृतबिन्दु' नामक पुस्तक पढ़ने को दी जाती है जिससे उसका भय और उलझन और अधिक बढ़ जाते हैं । भाई के समक्ष भी वह अपनी समस्या रखता है और जो भाई सुझाव देता है उस पर अमल भी करता है । औरतों के पैरों की ओर देखता है, किताबों से स्त्रियों के चित्र तक फाड़ देता है, सिनेमा देखने से कतराता है, हस्तमैथुन नहीं करता, ठण्ड पेलता है, ठण्डे पानी से स्नान करता है । इतना सब करने पर भी वह दिन-रात वीर्यपात और स्वप्न-दोष से ग्रस्त रहता है । भीष्म साहनी ने इस स्थिति में किशोर की मनोस्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक

1- झरोखे - पृ० 116

वर्णन किया है ।— ''कुछ महीनों से मैं बेहद अकेला महसूस करने लगा हूँ । अपने में खोया हुआ अलग-थलग बैठा रहता हूँ । हर रात जति लड़के के चेहरे की ओर देखता हूँ और अनुमान लगाने लगता हूँ कि उसे स्वप्न-दोष है या नहीं । अन्दर-ही-अन्दर जैसे मुझे कोई घुन खाए जा रही है ।''[1]

अपनी स्थिति का सही ज्ञान न होने पर एवं भ्रामक बातों में आकर किशोर अक्सर चिन्तित रहता है । सचाई से अनभिज्ञ रहता है । राजेश्वर सक्सेना के अनुसार '' 'झरोखे' उपन्यास में प्रवृत्ति-दमन का, व्यक्तित्व-दमन का चित्रांकन हुआ है । लाइफ स्पेटिक के अवरोध का वातावरण है । वीर्यपात और स्वप्न-दोष से आतंकित होकर तरुण अपने यथार्थ विकास से विमुख हो जाते हैं । ...... भय और पीड़ा से निर्मित संस्कार अमानवीय है, वह चरित्र-हत्या करने वाला होता है ।''[2]

बच्चा बड़ा होता जाता है और उसके जीवन का ज्ञान क्षेत्र विस्तृत होता जाता है । जीवन के आरंभ और अन्त जैसे जटिल रहस्यों से बच्चा भी उलझता है और अपने जीवन में जन्म और मृत्यु के एकसाथ घटित प्रसंग से पूर्णतः प्रभावित होता है । छोटी बहन की बीमारी के कारण दमतोड़ देना और उसी समय कुछ पलों बाद बड़ी बहन के बच्चा होना । जन्म-मृत्यु के ज्ञान अनोखे साक्षात्कार के अलावा जीवन में समयानुसार हो रहे परिवर्तनों, माता-पिता का वृद्ध होना, दोनों भाईयों का युवावस्था में पहुँचना और बहन के बच्चे का बचपन आदि। के कारण जीवन-चक्र निरन्तर चलता रहता है, इसका लेखक ने इन प्रसंगों द्वारा संकेत किया है ।

1- झरोखे – पृ० 122

2- भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना –पृ० 84

"ज़िंदगी की असल दौड़ कहाँ से शुरू होती है, कौन-सा मोड़ काटो तो लड़कपन पीछे छूट जाता है और जवानी शुरू हो जाती है ? कौन कह सकता है कि इस मोड़ के पीछे जो कुछ था वह धूमिल और अस्पष्ट था, महत्वहीन था, पर जो कुछ आगे होगा वह बिलकुल साफ़ होगा, महत्वपूर्ण होगा ? क्या बचपन में धूल उड़ती रहती है तो जवानी में नहीं उड़ती, और क्या वह मृत्युपर्यन्त नहीं उड़ती रहती ?"[1]

समय व्यतीत होता जाता है। व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रकार के अनुभवों को ग्रहण करता हुआ अग्रसर होता जाता है। शारीरिक एवं मानसिक तौर पर अनेक परिवर्तनों से वह प्रभावित रहता है। —" माँ ने दरवाज़ा खोला है। मेरा दिल धक् से रह गया है। माँ के होंठ कैसे लग रहे हैं ? माँ बूढ़ी हो गई है। उसका मुँह 'पोपला' हो रहा है। लगता है, उसके मुँह में एक भी दाँत नहीं।"[2]

पिता के बाल भी सफेद हो चुके हैं, बहन का बेटा तुतलाने और चलने लगा है। शहर का रंग-ढंग बदल चुका है और भाई के वैचारिक परिवर्तन से भी वह प्रभावित होता है।

—" भाई की बातें सुनते हुए यह सोया हुआ शहर मेरी नज़रों में फिर से जाग उठा है, सजीव और रोचक होने लगा है। इसकी अँधेरी शांत गलियों में जिन्दगी की लहर-सी दौड़ने लगी है।"[3]

पुराने का स्थान नया ग्रहण करता जाता है। जीवन परिवर्तनशील है और पल-पल कुछ नया बनता है और पुराने मूल्य टूटते जाते हैं। युगानुसार

1- अंधेरे - पृ0 141

2- अंधेरे - पृ0 130

3- अंधेरे - पृ0 139

परिवर्तन होते रहते हैं । आज के भौतिक युग में भावुकता का स्थान बौधिकता ग्रहण करने लगी है । समयानुसार हो रहे परिवर्तनों से व्यक्ति को समझौता करना पड़ता है । —— ''देखो जी, जो बच्चे की प्रारब्ध में लिखा है, उसे मिल जाएगा । तुम उसे क्यों रोकते हो ? पंछियों के बच्चों के जब पंख निकल आते हैं तो क्या वे घोंसले में बने रहते हैं ? वे उड़ारी मारकर निकल जाते हैं । ''1

बड़े भाई बलदेव के शहर जाने और व्यापार न कर कुछ नया करने के दृढ़ निश्चय के समक्ष माता-पिता को झुकना पड़ता है । भावुकता और पुराने विचारों को छोड़ उन्हें समय के साथ समझौता करना पड़ता है । समाज में हो रहे परिवर्तनों को जो व्यक्ति स्वीकार नहीं करते, उनका सामाजिक विकास में कोई योगदान नहीं रह जाता । वे अपनी परंपरागत रूढ़ियों और मिथ्या आडम्बरों में ही जकड़े रह जाते हैं । इन रूढ़ियों को तोड़कर और नवीन प्रगतिशील विचारों की स्थापना के लिए व्यक्ति को संघर्ष करना पड़ता है । समाज की प्रगति के लिए संकीर्ण विचारधारा को त्याग कर परिवार में ऐसा वातावरण निर्मित होना अतिआवश्यक है जिसमें किसी बच्चे का विकास सहजता से हो और वह धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिक विचारों एवं नैतिक बंधनों में जकड़ा न रह जाए । माता-पिता को अपने विचार बच्चे पर नहीं थोपने चाहिए । निरर्थक संशय और भय से भी बच्चे की मानसिकता पर प्रभाव पड़ता है । वह स्वस्थ एवं स्वतंत्र मनः स्थिति लेकर जीवन-पथ पर अग्रसर हो पाये, इसके लिए आडम्बरयुक्त धार्मिक क्रिया-कलाप और नैतिक मर्यादाओं के बन्धन शिथिल होने अति आवश्यक हैं ।

भीष्म साहनी ने मध्यवर्ग की मानसिकता के साथ-साथ भारतीय निम्न-वर्ग की स्थिति का भी संकेत उपन्यास में तुलसी के माध्यम से किया है । भारतीय

1- झरोखे – पृ0 147

समाज में जिस व्यक्ति को जन्म से जो स्थान मिल जाता है वह मृत्यु तक वही स्थान ग्रहण किये रहता है। घर का नौकर तुलसी निम्नवर्ग का है और आर्य-समाजी होने पर, पढ़ लिख जाने पर भी वह नौकर ही रहेगा, उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आ पाता। तुलसी को अपनी स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वह असन्तोष भी प्रकट करता है।— "क्या सारी उम्र में बर्तन ही मांजता रहूँगा।"[1] बर्तन मांजने से छुटकारा पाता है तो वैद्य की सीफ़ारिश आर्य समाज औषधालय पहुँच जाता है किन्तु वहाँ भी उसकी हैसियत नौकर की ही है। वह सीढ़ियाँ धोता है और वैद्यजी की साग-भाजी लाने का काम करता है। आर्य-समाज के प्रभाव के कारण अत्यन्त आदर्शवादी है किन्तु जीवन के कटु यथार्थ का अनुभव प्राप्त करके भी ये आदर्श उसके मस्तिष्क पर छाये रहते हैं। वह धर्म के प्रति अंध आस्था और एक प्रकार की जड़ता का शिकार रहता है। आर्य-समाजी धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं श्रद्धा रखता है। धर्म के नाम पर उसका शोषण वैद्य जी करते हैं। वह वैद्यकी सीखता है, सिलाई भी और बैंक में काम भी करता है किन्तु सब जगह भटकने पर भी उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आ पाता। निम्नवर्ग के लिए यह एक त्रासदी का विषय रहा है कि संघर्षरत रहने पर भी उनकी दशा में कोई खास परिवर्तन या सुधार नहीं आ पाता।

वस्तुतः भीष्म साहनी ने अपने जीवन के कुछ आरंभिक पृष्ठों को झरोखे में खोलकर पाठकों के समक्ष रखा है। अपने परिवेश से प्राप्त अनुभवों को चित्रात्मक शैली द्वारा एक सिद्धहस्त चित्रकार की तरह कृति में उभारा है। लेखक पूर्ण सहजता एवं स्वाभाविक ढंग से जीवन की खासी आम सच्चाईयों को हमारे सम्मुख रखता गया है। बाहरी परिवेश के अंकन के साथ ही पात्रों की मनः स्थिति का भी प्रभावपूर्ण चित्रांकन किया है। इस प्रकार 'झरोखे' में भीष्म जी ने

1- झरोखे — पृ० - 91

भारतीय मध्यवर्ग के एक परिवार के माध्यम से मध्यवर्ग की मानसिकता, उनके धार्मिक विचार, संस्कार एवं नैतिक मर्यादाओं के प्रति निष्ठा और सामाजिक बन्धनों की जकड़न के साथ बदलती परिस्थितियों में समाज में आ रहे परिवर्तन एवं उन परिवर्तनों से उत्पन्न दो पीढ़ियों के द्वन्द्व को भी प्रस्तुत किया है। भीष्म साहनी ने अपने बचपन एवं लड़कपन के वर्णन के रूप में एक मध्यवर्गीय बच्चे के बचपन और लड़कपन को अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ 'झरोखे' में प्रस्तुत किया है। जीवन में व्यक्ति किस प्रकार बचपन, युवावस्था, बुढ़ापा इत्यादि पड़ाव पार करता अग्रसर होता है, उसी प्रकार जीवन का चक्र चलता रहता है और समयानुसार व्यक्ति अपने आपको बदलता रहता है, इस बात को सशक्त ढंग से लेखक ने उपन्यास में किया है। जिन संस्कारों और अविस्मरणीय क्षणों से व्यक्ति का संक्रमण पनपता है वे व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं। भीष्म साहनी ने इन्हीं महत्वपूर्ण, अविस्मरणीय क्षणों को 'झरोखे' में पूर्ण सजीवता से अंकित किया है।

दूसरा अध्याय

कड़ियाँ —'मध्यवर्गीय जीवन का बिखराव'

"हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद वह आलोक स्तम्भ है जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को सर्वोन्मुख सामाजिकता से जोड़कर उसे एक निश्चित दिशा प्रदान की, विस्तृत आयाम दिये और एक सुदृढ़ परंपरा की शुरुआत की।"[1] प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकार इस परंपरा को विकसमान एवं सशक्त करते रहे हैं। मानव-समाज का बाहरी और भीतरी यथार्थ अपने उपन्यासों में प्रस्तुत कर, आज का उपन्यासकार पाठकों को वास्तविकता का दिग्दर्शन करवाता है। इन अर्थों में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का उद्देश्य मानव-जगत की समस्याओं एवं सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करना है। मानव-संबंधों में आ रहे परिवर्तनों और मानवीय-मूल्यों की टूटन का दर्द भी मुख्य रूप से आज के उपन्यासों में झलकता है। नवजागरण काल से ही भारतीय समाज में जो परिवर्तन आये, वे अपने साथ अच्छाईयों के साथ कुछ बुराईयाँ भी ले कर आये। व्यक्ति ने शिक्षा एवं आधुनिक परिवेश से जितना कुछ पाया उससे अधिक खोया भी। औद्योगिकीकरण हो जाने से भारतीय समाज की उन्नति का संकेत तो मिलता है किन्तु मानव भावुकता से धीरे-धीरे बौद्धिकता की ओर आकृष्ट होने लगा। सामाजिक व्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ा। संयुक्त परिवार प्रथा टूटी और एकल परिवार ने उसका स्थान ग्रहण किया। पारिवारिक संबंधों में रागात्मकता का अभाव धीरे-धीरे बढ़ने लगा। व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ अपना प्रभाव मानव पर डालने लगीं और पारिवारिक संबंधों में निकटता के स्थान पर दूरी व अजनबीपन उत्पन्न होने लगा। भाई-भाई में गहरे मतभेद देखे जाने लगे। आर्थिक रूप से व्यक्ति आत्म-निर्भर होने पर ज़ोर देने लगा। स्वार्थी प्रवृत्तियाँ एवं अमानवीय तत्वों का

---

1. हिन्दी उपन्यास – सामाजिक चेतना – डा० कुँवर पाल सिंह - पृ० 8

प्रभाव समाज में फैलने लगा । आज व्यक्ति नितान्त निजी जीवन जीने में विश्वास रखने लगा है । स्त्री-पुरुष संबंधों पर भी परिवर्तित परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव पड़ा ।

आधुनिक औद्योगिक युग में भारतीय दाम्पत्य जीवन की विषमताएँ बढ़ गई हैं और मानसिक रूप से इन विषमताओं से उलझे व इनसे जूझते स्त्री-पुरुष दोनों की मनोदशा अशान्त एवं अस्थिर होती रही है । आज के दाम्पत्य जीवन में विश्वास, सहयोग, स्नेह और सद्भाव मानो अपना अर्थ खोते जा रहे हैं और अविश्वास, असहयोग, घृणा और दुर्भाव के अन्धकार में स्त्री-पुरुष दोनों ही भटक रहे हैं ।

दाम्पत्य जीवन में पाया जाने वाला तनाव और स्त्री-पुरुष का आपसी द्वन्द्व उनकी 'असामान्य' सामाजिक मानसिकता का परिचायक है । वैवाहिक संस्थाओं के प्रति लोगों का अविश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । दाम्पत्य जीवन में टूटन अथवा संबंध विच्छेद की स्थिति के कई कारण हैं । डा० मंजुलता के मतानुसार —"स्वतन्त्रता के बाद देश के बदलते परिवेश में प्रेम और विवाह के क्षेत्र में स्वतन्त्रता, विवाहोपरान्त स्वतन्त्रता और यौन संबंधी नैतिकता को नये माप-दण्डों द्वारा मापा जाने लगा, स्त्री और पुरुष दोनों ने खुलकर वैवाहिक संस्थाओं का विरोध किया ।"[1] इसके अतिरिक्त नारी का शिक्षित एवं आत्मनिर्भर होना, एकल परिवार प्रथा, परम्परागत संस्कारों और आधुनिक पाश्चात्य विचारों को लेकर चलने वाले लोगों का भीतरी अन्तर्द्वन्द्व, अपने समाज और परिवेश के प्रति एक प्रकार का आक्रोश और अतृप्ति का भाव ।—"सामाजिक संदर्भों में

---

1. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग पृ०-

वैयक्तिक संदर्भों को नकारने की स्थिति में भयंकर संत्रास, घुटन और पीड़ा उसे सहनी होती है । यही वैयक्तिक टूटन सामाजिक विशृंखलता का कारण बन जाती है । ..... आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में मानव की दमित वासनाओं, कुंठाओं एवं वर्जनाओं का अंकन करने के साथ-साथ मानवमन की ग्रंथियों को खोलने का प्रयास भी मिलता है ।''[1]

दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न संबंध विच्छेद की स्थिति को साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है । भीष्म साहनी ने 'कड़ियाँ' उपन्यास में इसी समस्या को हमारे समक्ष रखा है । स्त्री-पुरुष के बाहरी एवं भीतरी जगत के अन्तर्द्वन्द्वों की स्वाभाविक प्रस्तुति इस उपन्यास में हुई है ।

भीष्म साहनी साठोत्तर कथा-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं । भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं और मानवमन के अन्तर्द्वन्द्व का यथार्थपरक अंकन उनकी कृतियों में हुआ है । 'कड़ियाँ' में भीष्म साहनी मध्यवर्गीय समस्याओं को प्रस्तुत किया है । विशेष रूप से दाम्पत्यजीवन में उत्पन्न असंगतियों और संबंधों में टूटन की स्थिति से उत्पन्न पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया गया है । मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में उत्पन्न समस्याएँ और मानसिक द्वन्द्व, कुंठा, हीन भावना, तनाव, क्षोभ, ईर्ष्या इत्यादि से उत्पन्न परिस्थितियों का एवं आधुनिक परिवेश में विवाह और पारिवारिक संबंधों की वास्तविक दशा का वर्णन भी लेखक ने इस उपन्यास में किया है ।

उपन्यास का नायक महेन्द्र मानसिक द्वन्द्व और दुविधा का शिकार है । अपने जीवन से असन्तुष्ट है । 'जो नहीं है उसके लिए' 'जो है' उसको खोने वाला यह व्यक्ति जीवन-भर भटकता रहता है । भीष्म साहनी ने उपन्यास में

1- साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप --डा०विमला शर्मा-पृ० 60

महेन्द्र की सी चित्त-वृत्ति के व्यक्तियों के बिखराव और भटकन का उपन्यास में उल्लेख किया है जो आधुनिक वातावरण और पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर अपने परंपरागत संस्कारों को त्याग देना चाहते हैं किन्तु त्याग नहीं पाते। नये और पुराने का द्वन्द्व उनके मन के भीतर चलता रहता है और जब यह द्वन्द्व उनके व्यावहारिक जीवन में व्यक्त होने लगता है तो उसके दुष्प्रभाव व्यक्ति को स्वयं तो भुगतने पड़ते ही हैं। साथ ही उसके पारिवारिक संबंधों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। मन में द्वन्द्व लिये जब व्यक्ति भटकता है, कहीं भी सुख नहीं पाता और धीरे-धीरे अपने परिवार से कटने लगता है। जीवन में उसे क्या चाहिए, वह नहीं जानता और जो उसके पास है उससे वह सन्तुष्ट नहीं हो पाता। महेन्द्र की मनःस्थिति उसके जीवन में अव्यवस्था और उलझाव उत्पन्न कर देती है। दिल्ली जैसे महानगर में रहने वाला यह नायक अपनी पत्नी प्रमिला एवं लड़के पप्पू के साथ दाम्पत्य जीवन की मर्यादाओं, नैतिकता-युक्त संस्कारों का निर्वाह करता हुआ जीवन व्यतीत करता है। किन्तु अपने जीवन के प्रति असन्तुष्ट यह व्यक्ति अपने मन को शान्त और सन्तुष्ट करने के लिए घर से बाहर भटकता है। यह भटकाव उसकी मानसिक विकलता को और अधिक बढ़ाती है। पत्नी उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकती। इस कारण वह पत्नी और समाज से छिप कर अपने आफिस में रिसेप्शनिस्ट के पद पर नियुक्त एक अन्य स्त्री, सुषमा से संबंध स्थापित करता है। आरंभ में सुषमा के घर जाने पर उसका संस्कारों से उत्पन्न भय त्रस्त किये रहता है। यह भय उसे सुषमा के घर जाने से रोकता है किन्तु वह उसे झटक कर अपने से दूर करना चाहता है।

"सुषमा के फ्लैट की घण्टी बजाने से पहले क्षण-भर के लिए हल्का-सा कम्पन हुआ था और उसकी साँस तेज़ चलने लगी थी। उहूँ। पुराने संस्कार हैं। उसने मन-ही-मन कहकर सिर झटक दिया था और घण्टी बजा दी थी।"[1]

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी -पृ० 8

महेन्द्र अपने पुराने संस्कारों के त्याग कर आधुनिक पाश्चात्य विचारों को अपनाना चाहता है। वह किसी प्रकार का सामाजिक एवं नैतिक बन्धन अपने जीवन में नहीं चाहता। उन सब का उल्लंघन कर अपनी इच्छापूर्ति को महत्व देता है। आत्मतुष्टि के लिए वह जो कुछ भी करता है, उसे उचित मानता है।

"उसने सिर झटक दिया, 'मैंने कोई गुनाह नहीं किया है। एक छोटी-सी बात को तूल दिए जा रही है।"[1]

मानसिक रूप से संशयग्रस्त एवं कुण्ठाओं से जकड़ा यह व्यक्ति सुषमा के पास पहुँच कर भी किसी प्रकार का सुकून नहीं प्राप्त कर पाता, उसका मन भटकता रहता है।— "सुषमा की बड़ी-बड़ी आँखों और बेपीरी सीती-सी आवाज़ में उसे क्षण भर के लिए हल्के से स्वांग का भास हुआ था, पर क्षण-भर ही बाद उसे उसी आवाज़ में गहरे अपनत्व का, आत्मीयता का भास भी होने लगा था।"[2]

दुविधा में घिरा यह व्यक्ति जो सोचता है ठीक उसके विपरीत करता है। उसका अचेतन मन उसे वे सब उसके व्यावहारिक जीवन में करवाता है जो वह नहीं करना चाहता।

"मैं सोचता हूँ अब मैं चलूँगा।"

पर सुषमा महेन्द्र के शब्दों से विचलित नहीं हुई थी, इसके विपरीत वह समझ गई थी कि अब महेन्द्र नहीं जाएगा। वह जानती थी कि 'दुविधा की भीत' पर आखिरी धक्के पड़ रहे हैं और वह शीघ्र भुरभुराकर गिर जाएगी।"[3]

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 8

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 9

3- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 11-12

महेन्द्र की दुविधा आरंभ से अन्त तक बनी रहती है । किसी एक स्थिति में वह सन्तुष्ट नहीं रह पाता । प्रमिला से जब शादी हुई थी तब वह बहुत भाती थी, यहाँ तक कि शादी परिवार वालों की इच्छा के विरुद्ध की थी किन्तु अब शादी के बारह साल बाद प्रमिला उसके लिए बासी पड़ गई है । —''प्रमिला का शरीर गदरा गया है, शरीर की हड्डी जैसे चौड़ी हो गई थी । हाथ उसके पहले से ही बड़े-बड़े थे, अब रसोई का काम करने से पहले की तुलना में ज्यादा खुरदरे और बोझल हो गये थे । चलती तो धीरे-धीरे, इसके अतिरिक्त सारा वक्त घर पर बने रहने के कारण उसकी पोशाक में या उसकी चाल-ढाल में कोई बांकपन नहीं रह गया था, कोई लड़कियों वाली बात नहीं रह गई थी ।''[1]

प्रमिला अपनी गृहस्थी में व्यस्त रहती है और महेन्द्र की शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा भी करती है । इन शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महेन्द्र सुषमा के पास जाता है । उसके मन को वहाँ कुछ सुकून भी मिलता है । प्रमिला के रूढ़िवादी विचारों और रहन-सहन के ढंग से महेन्द्र को एक प्रकार की चिढ़ उत्पन्न होती है । सुषमा की मद-भरी बातें और मोहक अदायें उसे आकर्षित करती हैं । सुषमा उसे प्रेम भी करती है । किन्तु छिप कर सुषमा से मिलने जाना पाप है, यह पाप प्रमिला के साथ विश्वासघात है, इस प्रकार के विचार उसे त्रस्त किये रहते हैं । वह जब प्रमिला के पास होता है तो सुषमा अपनी ओर आकर्षित करती है । उसका मन विचलित रहता है और कभी उसे अपनी स्थिति हास्यास्पद भी लगती है ।

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी- पृ0 19

— ''महेन्द्र अपनी मानसिक छटपटाहट के बावजूद हंस दिया। जब घर पर होता हूँ तो प्रमिला फूहड़ लगने लगती है, जड़, बासी, जिसके शरीर से और कपड़ों से बासी गन्ध उड़ती रहती है, पिछड़ी घरेलू प्रमिला, और मुझे लगता है, मेरे पैरों में जंजीरें पड़ी हैं। तब सुषमा के प्रति स्नेह के अनन्त सोते फूट उठते हैं और उत्तेजना की ज्वाला-सी उठने लगती है, और मन सुषमा के पास जाने को तड़पने लगता है। यह क्या ड्रामा चल रहा है, मेरे साथ ?''[1]

सुषमा के पास होने से उसे लगता है कि वह वासना के अतल में डूबता जा रहा है और उसके जीवन को डूबने से प्रमिला ही बचा सकती है। प्रमिला ही उसके जीवन की स्थिरता को बनाये रख सकती है। महेन्द्र प्रमिला के प्रति अपने मन में प्रेम व सम्मान रखता है। उससे विश्वासघात नहीं करना चाहता। अपने व सुषमा के संबंधों के विषय में प्रमिला को बता देता है। ऐसा करके वह मानसिक शान्ति एवं स्थिरता पाना चाहता है किन्तु प्रमिला पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। पति के प्रति उसका अटूट विश्वास खण्डित होता है।

''मैं समझे बैठी थी तुम शरीफ आदमी हो, बच्चों के हक में अच्छे हो, मेरे हक में अच्छे हो। मैं सतवंत से भी कहा करती थी कि तुम अच्छे आदमी हो, कड़वा बोलते हो पर हो अच्छे आदमी। आजकल कुछ पता नहीं चलता। कौन अच्छा है, कौन बुरा।''[2]

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — 14

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी —पृ० 30

प्रमिला की प्रतिक्रिया देख कर महेन्द्र को अपने सच्चाई बताने पर खेद होता है। वह सारा दोष सुषमा पर मढ़ देता है। किन्तु घर का वातावरण अशान्त हो उठता है। प्रमिला उसे दोषी मानती है। उसके हर कार्य को शंका की दृष्टि से देखती है। महेन्द्र की मानसिक दशा को न समझ कर स्वयं भी मानसिक द्वन्द्व में पड़ जाती है। दोनों के दाम्पत्य जीवन में कड़वाहट आने लगती है।

''जब से महेन्द्र ने आत्म-स्वीकृति की थी, प्रमिला उसकी हर हरकत को फटी-फटी आँखों से देखने लगी थी। घर लौटने पर कुरेद-कुरेद कर उससे पूछती कि उस रोज़ वह उसे मिली थी या नहीं, शरीर पर हाथ रखवाकर बार-बार फिर से कसम खाने को कहती, उपदेश देती, अपने पिता की मिसाल देती, यह भी कह देती कि एक बार तो उसने माफ़ कर दिया है, पर दूसरी बार माफ़ नहीं करेगी; और रात को अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे देर तक छत को ताकती रहती। न जाने उसकी नींद कहाँ उड़ गई थी।''[1]

आधुनिक युग में खण्डित दाम्पत्य जीवन का मुख्य कारण स्त्री-पुरुष के एक-दूसरे को समझ पाने में असमर्थ होना। जीवन में बढ़ रही व्यस्तता एवं घर के अशान्त वातावरण से स्त्री-पुरुष में पनप रहे तनाव से उत्पन्न एक दूरी जो धीरे-धीरे बढ़ती चली जाती है और संबंध विच्छेद की नौबत आ जाती है। अपनी मानसिक कुण्ठाओं एवं हीनभावना के कारण व्यक्ति मानसिक रोगी हो जाता है। वह जो भी कार्य करता है असामान्य अवस्था में करता है। महेन्द्र की यही स्थिति है। वह अपने आप में एक सामान्य व्यक्ति नहीं है और अपनी पत्नी

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ० 45

व अपने बीच संबंधों में तालमेल नहीं बिठा पाता ; इसी कारण उनका परिवार भी टूटने लगता है । प्रमिला महेन्द्र को हर समय संशय भरी नज़र से देखती है । महेन्द्र प्रमिला के असामान्य व्यवहार एवं घर के अशान्त वातावरण से तंग आकर प्रमिला पर हाथ उठा बैठता है । प्रमिला के प्रति उसके मन में एक जड़ता सी आ जाती है और दिन-प्रतिदिन उनके संबंध बिगड़ते जाते हैं । महेन्द्र नहीं चाहता कि उसका परिवार टूटे किन्तु परिस्थितियों एवं अपनी अस्थिर व अव्यवस्थित मनः स्थिति के समक्ष [illegible] होकर वे सब कृत्य करता है जो वह नहीं चाहता । मन को वह जितना स्थिर रखना चाहता, उतना ही उसका मन विचलित रहता है और इसी कारण उसके जीवन में अव्यवस्था पैदा होती जाती है ।

""महेन्द्र के पाँव जैसे ठण्डे पड़ते जा रहे थे । पलंग की पाटी पर वह काँपता हुआ बैठ गया । अन्दर-ही-अन्दर वह अपने पर हैरान हो रहा था : यह मैं क्या कर बैठा ? यह सब कैसे हो गया ? उसका गला अभी भी सूख रहा था और सिर में हथौड़े बजने लगे थे । मैं बहुत गलत बात कर रहा हूँ, जान-बूझकर बात को बढ़ाए जा रहा हूँ उसे तूल दिए जा रहा हूँ । अपना अपराध छिपाने के लिए उस पर अपराध मढ़े जा रहा हूँ ।""[1] महेन्द्र अपनी अस्थिर मनोस्थिति के कारण स्वयं ही विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों को आमंत्रित करता है । वह अपने जीवन में अव्यवस्था का कारण अपने आपको मानता है । किन्तु वह प्रमिला के व्यवहार, उसके सोचने के ढंग और परंपरावादी रूढ़िग्रस्त विचारधारा से भी परेशान है । प्रमिला के समक्ष अपना गुनाह स्वीकार कर वह समझता है कि उसने बहुत बड़ी भूल की है । जिस कारण से उसका जीवन

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 47

और भी अशान्त हो उठा है। प्रमिला के प्रति उसके मन में तीव्र रोष उत्पन्न होता है।

"औरत चाहे तो मर्द को अपनी मुट्ठी में रख सकती है। अगर यह सलीके वाली होती तो मैं सुषमा के पास जाता ही क्यों ? यह भी कोई ढंग है जीने का ? मैं कुछ माँगता नहीं, बोलता नहीं, इसलिए मेरे साथ बेरुखी की जाती है। जाए जहन्नुम में...... मैं जरूर सुषमा के पास जाऊँगा, जहाँ से प्यार मिलेगा लूँगा।"[1]

किन्तु अगले ही क्षण महेन्द्र को अपने बेटे पप्पू का ध्यान आता है। वह अपने बचपन के विषय में सोचकर पप्पू को कैसे दमघोंटू वातावरण से दूर रखना चाहता है, जिसमें वह रह चुका है।

"कुर्जे पर खड़े महेन्द्र की आँखों के सामने पप्पू की फटी-फटी आँखें आ गयीं। आज की हमारी इस झड़प से उस बेचारे का सारा साहस कुचला गया है। वह अब बात-बात पर डरता रहेगा, जिन्दगी-भर सहमा-सहमा रहेगा। जब मैं छोटा था तो मेरे माँ-बाप भी एक-दूसरे पर चिल्लाया करते थे। कैसी घिन उठती थी। कैसे मैं काँपने लगता था। पप्पू की भी यही दशा होगी। जिन्दगी-भर के लिए पंगु बन जाएगा।"[2]

महेन्द्र नहीं चाहता कि उसी की तरह मानसिक कुण्ठाओं में घिरा रह कर पप्पू पंगु व्यक्तित्व लेकर जीये। महेन्द्र को महसूस होने लगता है कि उसका सचाई बयान करना और सब प्रकार के प्रयास उसके परिवार को टूटने से नहीं बचा सकते। शादी के बारह साल बाद उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 48

2- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 48

कि उसकी शादी नाकामयाब साबित हुई है ।

''महेन्द्र के मन के अन्दर-ही-अन्दर एक प्रकार की जड़ता आने लगी थी जैसे धुन की बुंद जम जाए और उत्तरोत्तर कड़ी होती जाए । मैं इस औरत के साथ नहीं रह सकता, यह शादी भूल थी । हम एक-दूसरे के लिए नहीं बने हैं । महेन्द्र का माथा अभी भी तप रहा था और उसकी कनपटियों पर हथौड़े बज रहे थे ।''[1]

महेन्द्र सभी प्रकार के बन्धन तोड़कर आज़ाद होना चाहता था । एक दिन प्रमिला को उसके पिता के घर भेजकर और बेटे को बोर्डिंग स्कूल में दाखिल करवा कर वह कुछ राहत पाता है ।

महेन्द्र की दृष्टि में विवाह का कोई अर्थ नहीं रह जाता । उसे समाज के बनाये बंधन अर्थहीन लगने लगते हैं । प्रमिला को भेज कर अपने अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित करने में जुट जाता है । प्रमिला को फिर से अपने पास बुला ले, ऐसा सुझाव उसके मित्र और संबंधी देते हैं । किंतु महेन्द्र इन सब सुझावों को अनसुना करता जाता है और सुषमा से उसके संबंध दिन-प्रतिदिन प्रगाढ़ होते चले जाते हैं ।

प्रमिला और महेन्द्र का घर बिखर जाता है । दोनों दम्पति अपने जीवन की समस्याओं को सुलझा पाने में असफल होते हैं । महेन्द्र प्रमिला को अपनी समस्या समझा नहीं पाता । अगर कभी समझाने का प्रयास भी करता है तो प्रमिला उसे समझ नहीं पाती । दाम्पत्य जीवन में स्त्री-पुरुष का आपसी तालमेल व एक-

---

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ० 48-49

दूसरे को समझना, जीवन को सुखमय बनाने के लिए अति-आवश्यक है । एक-दूसरे को पूर्णतः भली प्रकार से समझकर और अपने-अपने विचारों में तारतम्य बनाये रखना चाहिए । दोनों में से एक की भी अव्यवस्थित मनः स्थिति और विचारधारा एक-दूसरे के संबंधों में तनाव की स्थिति उत्पन्न कर सकती है । एक-दूसरे के प्रति आकर्षण के अभाव से भी संबंध-विच्छेद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । विश्वास, निष्ठा और स्नेहसिक्त बन्धनों की शिथिलता दाम्पत्य जीवन में कड़वाहट बढ़ाती है । पति-पत्नी दोनों को आज के युग में अनेक मानसिक तनावों से गुजरना पड़ता है । एक-दूसरे के मानसिक द्वन्द्व को यदि समझकर सुलझाने का प्रयास किया जाए तो संभव है कि अधिक सम्बन्ध हो रहें तलाक कम हो सकें । संबंध-विच्छेद की स्थिति समाज में विवाह एवं परिवार के महत्व को कमज़ोर बना रही है । डा० उर्मिला भटनागर के अनुसार -- ''फ्रायड के मतानुसार अज्ञात मन के अन्तर्द्वन्द्वों के परिचय के बिना व्यक्ति को समझना नितान्त असंभव है । अतः दाम्पत्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष का महत्व नकारा नहीं जा सकता । आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार तो दाम्पत्य जीवन की समस्त लीलाएँ अचेतन मन द्वारा प्रचलित होती हैं । अचेतन मन वह अनुभवात्मक मानसिक शक्ति है जो दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के व्यक्तित्व का विकास करती है । पति-पत्नी के जीवन में जो तनाव, द्वन्द्व, घुटन, कुण्ठा या वर्जना उत्पन्न होती है, उसके पीछे अचेतन मन में संग्रहीत भाव ग्रन्थियों (emotional complexes) ही प्रमुख है, जिनका स्रोत विक्षिप्तावस्था तथा स्वप्नावस्था दोनों है । पति-पत्नी दोनों में से एक या दोनों के मन की शंकायें, दुश्चिन्तायें, असंगत कल्पनायें, दिवास्वप्न आदि मिल कर एक तीव्र प्रभाव दोनों के मनोविज्ञान पर छोड़ते हैं ।''[1]

1- हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण -- पृ० 17

भीष्म साहनी ने 'कड़ियाँ' में एक मध्यवर्गीय परिवार के टूटन का मनोविश्लेषित अंकन किया है। महेन्द्र की अस्थिर मनोवृत्ति, उसकी भटकन का कारण बनती है और महेन्द्र की भटकन प्रमिला व पप्पू के जीवन में अव्यवस्था उत्पन्न कर देती है।

पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर महेन्द्र स्वच्छन्द जीवन जीना चाहता है। सुषमा और महेन्द्र दोनों एक-दूसरे के अधिक निकट आ जाते हैं।

"प्रमिला के चले जाने से ये प्रेमी आज़ाद तो हो गए थे पर साथ ही एक दिशा-हीन किनारे में जा पड़े थे, जिसका कोई कूल-किनारा न था। इसमें वे केवल अबाध रूप से बे रोकटोक घूम सकते थे पर उनके सामने कोई गन्तव्य न था। दोनों की आँखों के सामने कोई साझा भविष्य नहीं था, जिसे वे इस कमरे की घुटन-भरी परिधि के पार देख सकते हों।"[1]

दोनों के संबंध वासना के आधार पर टिके थे और जल्द ही यह आधार धीरे-धीरे कर टूटने लगा था। दोनों एक-दूसरे से उब गए थे। महेन्द्र को वही प्रमिला जैसा बासीपन अब सुषमा में भी महसूस होने लगा था। दोनों अपने प्रेम को बचाने की चेष्टा भी करते हैं किन्तु --" दोनों के बीच किसी-न-किसी वक्त घृणा की ज्वाला भड़क उठती, उसकी जलती शिखा, साँप की जीभ की तरह कमरे में काँप जाती, फिर शीघ्र ही शान्त भी हो जाती, दोनों अपने को संयत कर लेते, यह जानते हुए कि दोनों का आपस में मूलतः कोई संबंध नहीं है, एक-दूसरे से उन्हें कुछ भी लेना-देना नहीं है।"[2]

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी- पृ० 144

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 145

वस्तुतः महेन्द्र और सुषमा दोनों के संबंध हीनता के दायरे में एक-दूसरे का साथ अधिक दूर तक न दे सके और उनके संबंध टूट गये ।

प्रमिला और सुषमा से कटकर महेन्द्र अपना सारा ध्यान अपने आफिस के काम में केन्द्रित कर लेता है । वह तरक्की पाता है और अफसरों की दुनिया में कदम रखता है । — ''उस नयी प्रोमोशन के मिलने से महेन्द्र का स्तर बदल गया था । उसे बार-बार लगता जैसे अंधेरे कुएं में से निकल कर रोशनी में आ गया है ।''[1]

महेन्द्र के माध्यम से लेखक ने अफसरों की दुनिया, उनके तौर-तरीके एवं खोखली शान-शौकत व चमक-दमक का जिक्र किया है । पाश्चात्य समाज के तौर-तरीकों व विचारधारा से यह वर्ग पूर्णतः प्रभावित रहता है । महेन्द्र पप्पू से मिलने पहाड़ पर स्थित उसके स्कूल जाता है । रास्ते में उसकी मुलाकात मिसिज़ भगत से होती है, जो किसी हवाई सेना के आफिसर की बीवी है । मिसिज़ भगत और उनके वर्ग से महेन्द्र अत्यन्त प्रभावित होता है । अपने वर्ग व स्थिति से असन्तुष्ट महेन्द्र जैसे मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने से उच्च वर्ग में प्रवृष्ट होने का प्रयास करते हैं । महेन्द्र भी ऐसा ही प्रयास करता है और उस वर्ग में प्रवेश पाने में सफल भी होता है । वह इस वर्ग के तौर-तरीके सीखने के लिए उनके व्यवहार और बातचीत करने के ढंग को गौर से देखता है । — '' छोटी-छोटी बातें करने की अपनी कला है, अपना आर्ट है । प्लेट हाथ में लिए खड़े-खड़े छोटे-छोटे विषयों पर बातें करना, छोटे-छोटे चुटकुले कहना, हास्य और व्यंग्य के छोटे-छोटे फिकरे कसना, ऊपर वाली जमात के लोगों की विशिष्टता है, स्त्रियाँ

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी- पृ0 157

का तो यह अतिरिक्त आभूषण है, मुस्कराती रहती है और बेझिझक छोटे-छोटे वाक्य बोलती रहती है । बात छू भी जाये तो पता नहीं चले कि झूने के लिए कही गयी है ।''[1]

महेन्द्र इस बात से भी बड़ा प्रभावित होता है कि 'अमर वाली जमात' में पतिपत्नी संबंध विच्छेद को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता, अपितु इसे एक प्रकार का फैशन माना जाता है । — ''इस माहौल में उसे लगा, पतिपत्नी के एक-दूसरे से अलग हो जाने का कुछ-कुछ बौद्धिक मूल्य ही आंका जाता है । इसमें कुछ-कुछ आधुनिकता की पुट है, और कुछ नहीं तो मनुष्य चर्चा का विषय तो बन ही जाता है ।''[2]

मिसेज़ कपूर के उन्मुक्त व्यवहार एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होकर महेन्द्र उसकी ओर आकृष्ट होने लगता है । —

'' मिसेज़ कपूर में बच्चों-सा खिल-खिलापन था, जो न प्रमिला में था न सुषमा में । उसमें बड़ी उन्मुक्तता थी, अपने और पराये का भेद भी मिसेज़ कपूर नहीं करती थी । थोड़ी ही देर में वह महेन्द्र से ऐसी हिल-मिल गयी थी मानो बरसों की जान-पहचान हो । मिसेज़ कपूर की रुचियां भी अधिक परिष्कृत थी, उनमें एक सहज सौन्दर्य की भावना थी, एक अलबेलापन था जो सीधा प्रकृति की देन जान पड़ता था, बहती हवाओं, सरसराते वृक्षों और मदमस्त माती बेलों की देन ।''[3]

1- कड़ियां — भीष्म साहनी — पृ० 169
2- कड़ियां — भीष्म साहनी — पृ० 171
3- कड़ियां — भीष्म साहनी — पृ० 163

महेन्द्र मिसेज़ भगत की निगाहों से ही वासनात्मक निमंत्रण पाना चाहता है। दूसरी ओर बीती जिन्दगी के अभिसार को घृणा की दृष्टि से देखता है। उसका मन अस्थिर रहता है कहीं भी चैन नहीं पाता। प्रमिला के प्रति सहानुभूति का भाव कभी-कभी उसके मन में उभरता है किन्तु शीघ्र ही उसके विषय में सोचना अपनी भावुकता समझता है और भावुकता को जीवन में कोई स्थान नहीं देना चाहता। यही भावुकता उसके जीवन की प्रगति में बाधक हो सकती है ऐसा भय उसके मन में बना रहता है।

—"अब जो प्रमिला लौट आई तो जिन्दगी का आखिरी चांस भी खो जायेगा, इसके विपरीत फिर से वही घिस-घिस शुरू हो जायेगी। उसे पहले मुहल्ले की याद आई जहाँ उसके घर के पिछवाड़े रहने वाला धोबी शाम को नदी पर से लौटने पर अपने दोनों गधों को एक ही रस्सी के साथ बाँध दिया करता था। एक पैर गधे का, दूसरे गधे के एक पैर से बाँध देता। लगता दोनों गधे स्वतन्त्र खड़े हैं पर दोनों में से कोई भी तीन गज़ से ज्यादा दूरी तक नहीं जा पाता था। रात-भर दोनों गधे एक-दूसरे को काटते अथवा खुजलाते रहते थे। इसी प्रकार का रिश्ता पिछले बारह साल तक चलता रहा था, और अब महेन्द्र फिर से उसमें पड़ना नहीं चाहता था, उसके बारे में सोचकर ही उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। सुषमा के पास उसका अभिसार भी असंगत बात थी। महेन्द्र का मन बार-बार कहता, अच्छा हुआ जो पिण्ड छूट गया।"[1]

महेन्द्र अपने जीवन में अब वासना को महत्व नहीं देना चाहता किन्तु समय-समय पर उसकी यह भावना उभर उठती थी। वासना और भावुकता के

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ० 159

वश में पड़ा व्यक्ति अतल गहराई में डूबता जाता है। महेन्द्र इस स्थिति से स्वयं को बचाकर स्वच्छन्द जीवन जीने में विश्वास रखता है। प्रमिला के जीवन में उत्पन्न अव्यवस्था का दोषी वह स्वयं को स्वीकारता है। तलाक के लिए कचहरियों के चक्कर भी लगाना उसे पसन्द नहीं है। प्रमिला को वापस लाना और किसी प्रकार का बन्धन अब उसके लिए असह्य है। भावुकता में बहकर वह किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहता। भावुकता को अपने जीवन में कोई अहमियत नहीं देता। — ''भावुकता उसे यों भी पसंद नहीं थी, लिजलिजी, आँसुओं से सनी भावुकता।''[1]

अपने दोहरे व्यक्तित्व और दुविधायुक्त मानसिकता के कारण ही वह किसी भी प्रकार अपने परिवार एवं दाम्पत्य जीवन को टूटने से नहीं बचा पाता। अपने जीवन में स्थिरता भी नहीं ला पाता। जीवन भर भटकता है।

प्रमिला परम्परागत विचारों व संस्कारों को मानने वाली स्त्री है। व्यक्ति के जीवन में नैतिकता को सर्वोच्च महत्व मानती है। महेन्द्र के असामान्य व्यवहार से उसके जीवन में एक हलचल उत्पन्न हो जाती है। उसे अपना जीवन बिखरा हुआ नज़र आने लगता है। वह अपने दाम्पत्य जीवन और बेटे से परिवार को बनाये रखना चाहती है। पति के कहे अनुसार सब कुछ करना भी स्वीकार लेती है, हर प्रकार से पति को सन्तुष्ट रखने को भी वह तत्पर है। अपने परिवार को टूटने से बचाने के लिए वह अपनी सहेली सतवंत से राय मांगने जाती है। सतवंत एक सुव्यवस्थित एवं सुखी पारिवारिक जीवन जी रही है। प्रमिला उससे प्रभावित है और वैसा ही जीवन जीना चाहती है।

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 128

''तूने अपने सरदार जी को कैसे काबू में रखा हुआ है सत्तो ?'' सहसा प्रमिला बोल उठी।''[1]

प्रमिला सुन्दर और सरल स्वभाव की स्त्री है किन्तु वे सब तोर-तरीके व ढंग नहीं जानती जिससे पति को अपने काबू में रख सके। शारीरिक संबंधों के प्रति उसकी कोई रुचि नहीं रह गई थी।

''क्या पत्नी का कोई फर्ज़ नहीं होता ? तुम्हें यह जानने की इच्छा भी नहीं होती कि मर्द चाहता क्या है ?''

''मैं जानती हूँ मर्द क्या चाहता है। मुझे वह सब अच्छा नहीं लगता। सो जाओ।''

''इसीलिए जड़ की जड़ बनी लेटी रहती हो। फिर शादी ही क्यों की थी ?''

प्रमिला सोए-सोए ही हँस दी, ''शादी तो बच्चे पैदा करने के लिए की जाती है।''

''तो हर बार तुम बच्चा पैदा करने के लिए यह काम करती हो ?''

''मैं कहाँ करती हूँ। तुम पर जनून सवार होता है तो मैं कहती हूँ चलो कर लो। यह कोई अच्छी चीज़ थोड़े ही है। स्वामी जी ने तो लिखा है कि साल-भर में एकाध बार करना चाहिए।''[2]

प्रमिला सेक्स के प्रति मन में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं रखती अपितु इन सब से विरक्ति रखती है। वह महेन्द्र की आवश्यकताओं की पूर्ति

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 57

2- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 25

नहीं कर पाती, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक । महेन्द्र को वह एक 'जड़', 'बासी' व 'ठण्डी' स्त्री जान पड़ती है जिसे उसकी भावनाओं से कोई तालुक नहीं । प्रमिला उसे एक मशीन की तरह घर के काम में व्यस्त, रसोई की गन्ध से शरीर में लिए व ढेर सी थकावट से चूर रात को बिस्तर पर गिरते पाती है । महेन्द्र को प्रमिला का व्यवहार भीतर से कचोटता रहता है । उसके प्रति वितृष्णा का भाव महेन्द्र के मन में उत्पन्न होने लगता है । पतिपत्नी में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण का अभाव ही संबंध-विच्छेद का एक मुख्य कारण है ।

प्रमिला आर्य-समाज विचारधारा से प्रभावित है । मन से धार्मिक और नैतिक आदर्शों व नियमों का पालन करने वाली यह स्त्री जीवन की विडम्बनाओं से जूझने में अपने आपको असमर्थ पाती है । सतवंत प्रमिला की स्थिति को समझती है । ''मन-ही-मन सतवंत स्थिति की तह तक जा पहुँची । यह सब उस औरत के कारण है, उसके पास जाना भी चाहता है, और नहीं भी जाना चाहता, जितना ज्यादा अपने को रोकता होगा, उतना ज्यादा प्रमिला पर अपनी खीझ निकालता होगा ।''[1]

किंतु प्रमिला पर महेन्द्र का हाथ उठाना सतवंत को उचित नहीं जान पड़ता । वह प्रमिला को उसका विरोध करने का सुझाव देती है । वह प्रमिला को सशक्त बनने के लिए प्रोत्साहित करती है । जिससे प्रमिला अपनी विकट परिस्थितियों से स्वयं निपट सके ।

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ० 61

प्रमिला अपने चाचा-चाची को भी घर बुलाती है और अपनी स्थिति से अवगत करवाती है। उन्हें महेन्द्र को समझाने के लिए कहती है। चाचा महेन्द्र को समझाने का प्रयास करता है और चाची प्रमिला को दुनियादारी के विषय में समझाती है। चाची के मतानुसार स्त्री को पति के समक्ष झुक कर रहना चाहिए। प्रमिला को दुनियादारी और सुखी-परिवार बनाये रखने के सभी तौर-तरीके समझाती है।

"जो औरतें समझदार होती हैं, वे आंखें मूंद लेती हैं, जो समझदार नहीं होतीं, वे चिल्लाती हैं, रोती - झींकती हैं, वावेला मचाती हैं और अपना घर बरबाद कर लेती हैं। मर्द का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। औरत जितनी ज्यादा चालाक होगी, उतनी ज्यादा अपने हक में और अपने बच्चों के हक में अच्छी होगी। सीधी औरत किसी काम की नहीं होती। सीता माई सीधी थी ना, तिल-तिल कर मरी।"[1]

चाची की नसीहतें और सतवंत की जोशभरी बातोंमें प्रमिला किसे मानकर अपनी समस्या सुलझाये, इसी में वह उलझ जाती है। —" चाची के चले जाने के बाद देर तक प्रमिला का सिर भन्नाता रहा। यह कौन-सा तूफान उठ खड़ा हुआ है, यह मुझे कहाँ पर पटकेगा? जो बातें कभी नहीं सुनी थीं, जिनका कभी ख्याल भी नहीं आया था, वही आज सुन रही हूं। किसकी सुनूं, चाची की या सतवंत की? सतवंत कहती है — डटजा, महेन्द्र के बड़े अफसर से शिकायत कर, महेन्द्र को धमकी दे, अपने हक मनवा, चाची कहती है — "सुषमा के पैर पकड़ घरवाले की चापलूसी कर.... मैं किस रास्ते जाऊं?"[2]

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 82

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 84

पति का सुझाव मानकर प्रमिला सुषमा को पप्पू की जन्मदिन पार्टी में भी बुलाती है किन्तु उसके समक्ष अपने आपको सहज नहीं रख पाती और महेन्द्र की मानसिक स्थिति सुधरने के स्थान पर और उलझ जाती है। महेन्द्र को प्रमिला के चाचा और दोस्त नारिशाह के समझाने का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रमिला का चाचा एक अनुभवी और महेन्द्र जैसे व्यक्ति की स्थिति को भली प्रकार समझने वाला व्यक्ति है। अपने अनुभवों द्वारा अर्जित ज्ञान वह महेन्द्र के समक्ष रखता है। उसे समझाने का प्रयास करता है।

"साफ बात है, हर मर्द की औरत किसी-न-किसी वक्त बासी पड़ जाती है। यह उससे ऊब उठता है, कुदरती बात है। ऐसा युग-युगों से चला आया है, और चलता रहेगा। पर गृहस्थी तोड़ने या बनाए रखने की बात अलग है....."[1]

महेन्द्र ने देखा, चाचा जी अपनी सुसंस्कृत शब्दावली में वही कुछ कह रहे थे, जो नारा टूच्चों की भाषा में कहा करता था।

महेन्द्र पर चाचा की अनुभवी बातों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। किसी एक व्यक्ति के अनुभव किसी दूसरे व्यक्ति पर उतना प्रभाव नहीं छोड़ते। हर व्यक्ति अपने अनुभव से ही सीखता है।

"पर देश और काल के अनुरूप अथवा प्राचीन परंपरागत अनुभवों के अनुरूप सीख मिले और मनुष्य सतर्क हो जाए और अपने व्यवहार को उसी के अनुसार ढाल ले और सुखी हो जाए, ऐसा कब हुआ है? मनुष्य का जीवन सीधी रेखा पर कभी चल पाया है? और वह भी त्रस्त, उखड़े हुए, आतंकित मनुष्य

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ० 85

था ।''[1]

महेन्द्र की समस्या दूसरी स्त्री से प्रेम की न होकर डांवाडोल मनःस्थिति की है । समाज में जिस प्रकार पुराने मूल्य टूट रहे हों और नये उनका स्थान ले रहे हों तो मानव-मन पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ता है । वह किसे स्वीकारे और किसे छोड़े । किस दिशा में जाये और किस दिशा में नहीं जाये । वह असमन्जस्य की स्थिति में भटकता है । महेन्द्र की स्थिति ऐसी ही थी, उसके साथ उसके मन में उत्पन्न एक खालीपन है । — ''मुझे जिन्दगी में क्या मिला, उसने मन-ही-मन कहा और उसके अन्दर आत्मानुकम्पा की लहर-सी उठने लगी और गले में कटि-से चुभने लगे ।''[2]

प्रमिला महेन्द्र के हर क्रिया-कलाप को संशय की दृष्टि से देखने लगती है । महेन्द्र को फिर से पानी के लिए वह सतवंत और चाची दोनों की बातों पर अमल करती है । किन्तु महेन्द्र को प्रमिला की ज़िद और भावुकता से खीझ उत्पन्न होती है । वह प्रमिला की पहले से अधिक उपेक्षा करने लगता है । प्रमिला मानसिक रूप से अधिक उपेक्षा करने लगाता है । प्रमिला मानसिक रूप से बिखर ती जाती है और हिस्टीरिया का शिकार हो जाती है । शारीरिक रूप से तो वह पहले ही टूट चुकी थी ।—

''प्रमिला सहसा थकी-थकी-सी महसूस करने लगी, उसके सारे शरीर में एक प्रकार की अलसाहट भर गई । जैसे सहसा ही शरीर के सब बन्द टूटने लगे हों । उसे लगा जैसे फिर से उसके अन्दर वह धीमी-सी अग्नि जलने लगी है, जो कुछ दिनों से दिन-रात जलती रहती थी, जैसे घुन फिर उसे अन्दर-ही-अन्दर

1- कड़ियाँ – भीष्म साहनी – पृ० 69

2- कड़ियाँ – भीष्म साहनी – पृ० 81

से चाहने लगा है।''[1]

प्रमिला का विवेक अपने वश में नहीं रह गया था। संशय और अविश्वास ने उसे चारों ओर से घेर लिया था। — '' हर रोज मौका पाकर महेन्द्र की अलमारी में झांकती रहती थी, उसकी जेबों में हाथ डालती, उसके बटुए को खोल-खोलकर देखती रहती थी — यह जानते हुए भी कि महेन्द्र को पता चल गया तो घर में कलह खड़ा होगा, महेन्द्र उस पर हाथ उठाएगा, बुरा-भला कहेगा। लेकिन ऐसा करना उसके बस की बात नहीं रह गया था।''[2]

महेन्द्र को जल्द ही इन बातों का पता चलता है कि इन कार्यों के लिए उसके मन में प्रमिला के प्रति घृणा और वितृष्णा बढ़ती जाती है। दोनों के बीच दूरी बढ़ती जाती है। अस्थिर मनः स्थिति और संशय, घृणा जैसे दुर्भाव जब दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने लगते हैं तो पति-पत्नी दोनों एक दूसरे से दूर होते जाते हैं। घर में कलह एवं अशांति का वातावरण बन जाता है। ''मनः स्थिति की विकलता के कारण उनका जीवन मृतप्राय हो जाता है। विच्छिन्न अथवा विघटित दाम्पत्य की पूर्व स्थिति में दोनों तनावपूर्ण वातावरण में रहते हैं।''[3]

प्रमिला धैर्य से अपनी समस्या का समाधान न सोच कर एवं अपनी मानसिक विकलता को स्थिर न रख पाने के कारण अपने जीवन में आई विकट

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 71-72

2- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 72-73

3- हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण - डा0 उर्मिला भटनागर, पृ0 10-11

समस्या को नहीं सुलझा पाती । अशान्त मन लिये अपने पिता नारंग साहब के घर आ जाती है । पति और पुत्र से दूर, अपने भविष्य के लिए चिन्तित एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ यह स्त्री मन को शान्त करने के लिए जाप का सहारा लेती है । धर्मभीरू एवं नैतिकता का लबादा ओढ़े प्रमिला पूजा-पाठ में और जापादि द्वारा अपनी समस्या को सुलझाने का प्रयास करने लगती है ।

''दिल की बेचैनी में प्रमिला पागलों की तरह जाप पर झपटी । उसके रूग्ण मन को लगा जैसे उसे अवलम्ब मिल गया है । घर की ओर पाँव बढ़ाए चलती जाती और जाप से जुड़े तरह-तरह के नियमों के बारे में सोचती जाती ।''

किन्तु इन उपायों से भी प्रमिला के मन की व्याकुलता कम नहीं होती और उसकी समस्या इस प्रकार सुलझ जायेगी ऐसा सोचना यथार्थ से मुँह मोड़ने जैसा था । प्रमिला को उसके पिता यथार्थ की ओर संकेत कर उसे काल्पनिक लोक से बाहर लाते हैं ।

''जाप-वाप में क्या रखा है, इससे क्या होता है । फिजूल की बात । तुम बैठ कर जाप करो और मैं अदालत की खाक छानूँ ।''

प्रमिला को लगा जैसे वह कोई अपराध करती पकड़ी गयी है । दरी पर बैठी वह जाप का आनंद लेती रही है, जबकि समस्या का सारा बोझ अपने पिता पर डाले रही है ।''[2]

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 112

2- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 119

स्त्री अपने जीवन में सामाजिक सुरक्षा चाहती है। यह सुरक्षा उसे अपने परिवार से मिलती है। विवाहित स्त्री के लिए पति सशक्त सम्बल है। भारतीय समाज में विशेष रूप से मध्यवर्ग में बिना पति के संरक्षण के स्त्री असहाय और दुर्बल मानी जाती है। अपना परिवार और सामाजिक सुरक्षा बनाये रखने के लिए स्त्री भरसक प्रयास करती है। प्रमिला भी अपने परिवार को फिर से पाने के लिए, जो उससे संभव हो पाता है, वो वे सब प्रयास करती है। वह महेन्द्र से उसके दोस्त नारीशाह के घर मिलती है। रात-भर उसके साथ रहती है। अपनी भावुकता के उद्वेग में महेन्द्र को बहा ले जाती है। किन्तु महेन्द्र अब दुबारा किसी प्रकार के बन्धन में अपने आपको जकड़ना नहीं चाहता था और अन्ततः प्रमिला का यह प्रयास भी बेकार साबित हुआ। प्रमिला द्वारा भावुकता और वासना के बन्धन में महेन्द्र को बांधे रखना संभव नहीं हो पाता।

"भावुकता और वासना का ज्वार उतर चुका था, और महेन्द्र की आँखों के सामने जिन्दगी के नुकीले पत्थर टेढ़े-मेढ़े, खोह, चट्टानें, फिर से अपनी सारी कुरूपता लिये नज़र आने लगे थे। जीवन फिर से जटिल हो उठा था।"[1]

प्रमिला अपने परिवार को फिर से पाने में सफल नहीं हो पाई। महेन्द्र की निष्ठुरता और अपनी असहाय स्थिति उसे जीवन का कटु यथार्थ दिखा रही थी। प्रमिला के मन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठती है। पागलों की तरह सड़कों पर चिथड़े इकट्ठे करने में लगी रहती है। पति-पुत्र से दूर और आर्थिक रूप से पति पर आश्रित रहने

1- कड़ियाँ – भीष्म साहनी - पृ0 139

वाली यह स्त्री, पति के घर से निकाल देने पर पिता के घर आश्रय लेती है और पिता की स्थिति से भी अनभिज्ञ नहीं है, किन्तु हर तरफ से मजबूर और निर्बल प्रमिला का इस प्रकार की विकट विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों में पागल हो जाना स्वाभाविक ही था।

प्रमिला के पागलपन का अन्त उसके दुबारा माँ बनने पर होता है। इस बीच महेन्द्र उसे देखने पागलखाने जाता है। उसकी दशा देख कर उसे अपने पर आत्मग्लानि होती है।

''अनायास ही प्रमिला को देखकर महेन्द्र का दिल बेचैन-सा हो उठा। इस वक्त प्रमिला उसे बड़ी निरीह और निःसहाय नज़र आयी। उसके दिल में फिर वैसी ही बेचैनी सी उठी जैसे पहले भी कई बार उठ चुकी थी, क्षोभ, परिताप, आत्मानुकम्पा, अन्दर-ही-अन्दर सुलगता रहने वाला क्रोध, जिसमें..... ।''[1]

प्रमिला के प्रति दया और उमड़ता अपनापन महेन्द्र को यह जान कर एकाएक समाप्त हो जाता है कि प्रमिला माँ बनने वाली है। वह इसे प्रमिला की एक चाल समझता है, जिसके द्वारा उसे फिर से गृहस्थी के जाल में फँसाने की चेष्टा की जा रही है। उसका शंका ग्रस्त मन प्रमिला की स्थिति देखकर और भी अधिक भटकने लगता है। —

''फिर से मुझे गृहस्थी में बाँधने के लिए प्रमिला ने जो षड्यन्त्र रचा था, उसमें वह कामयाब हो गयी है.. .... कौन कैसे प्रमाणित कर सकता है कि इसकी कोख में मेरा बच्चा है, कानून की दृष्टि से ये लोग मेरा

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 139

कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते । न जाने किस के साथ मुँह काला कर आयी है ।''[1]

महेन्द्र की मानसिकता को नारीवाद समझता है और महेन्द्र के मन के संशय को जानकर महेन्द्र जैसे व्यक्तियों पर तीखा व्यंग्य करता है ।

''मैं देख रहा हूँ कि मेरे पास महेन्द्र बैठा बोल रहा है या महेन्द्र का दादा । तू तो नयी रोशनी का आदमी है ना ?''[2]

आधुनिकता का झूठा दम्भ करने वाले मध्यवर्गीय व्यक्ति का यथार्थ रूप लेखक ने महेन्द्र के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया है । संकीर्ण मानसिकता को लेकर चलने वाला यह व्यक्ति पाश्चात्य विचारों और अमीरजादों के लोगों का अनुकरण करने पर भी अपना वास्तविक रूप छिपा नहीं पाता । उसका स्वरूप उसके व्यवहार से स्पष्ट होता जाता है ।

प्रमिला के माँ बनते ही धीरे-धीरे उसकी दशा में सुधार आने लगता है । वह अब महेन्द्र के पीछे भटकना नहीं चाहती । अपने को इतना समर्थ व सशक्त बनाने में जुट जाती है कि आर्थिक रूप से वह आत्मनिर्भर हो सके । अतीत को भूल कर वर्तमान और भविष्य के लिए सतर्क हो उठती है ।

''मुझे कुछ याद नहीं । बहुत सोचती हूँ तो जैसे गाड़ी के पहिये से घूमने लगते हैं ।'' फिर ठण्डी साँस भरकर बोली ''किस्मत फूट जाये तो क्या करो । पिछले जन्म में बहुत पाप किये होंगे जिनका फल भोग रही हूँ

1- कड़ियाँ – भीष्म साहनी – पृ० 187

2- कड़ियाँ – भीष्म साहनी – पृ० 188

और क्या ।''[1]

प्रमिला महेन्द्र के पति के लिए बहुत भटक चुकी है । अब और भटकना नहीं चाहती । महेन्द्र उसे वापस बुला ले उसके लिए अपने नवजात शिशु को कुएँ में फेंकने तक चल पड़ती है, किन्तु ममता उसे ऐसा करने से रोकती है । उसका विवेक जागृत हो उठता है और अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उसके नियन्त्रण में आ जाती है । — ''वह जाने उसका काम । सच पूछो तो सत्तो, अब वह मेरे मन पर से उतर गया है । उसके पीछे बहुत भागी-भटकी हूँ, पर अब मन नहीं करता ।''[2]

प्रमिला के मन में महेन्द्र के प्रति तीव्र आग्रह और आकर्षण धीरे-धीरे कम होने लगा था । वह अपनी स्थिति के प्रति जागरूक हो उठी थी ।

''अगर कल वह कहे कि वह तुझे बसा लेगा तो उसके पास चली जाएगी ?'' सतवंत ने मानो प्रमिला का दिल टोहते हुए पूछा ।

प्रमिला चुप हो गई । क्षण-भर शून्य में देखती रही, फिर धीरे-से बोली —''मैं क्या जानूँ सत्तो, मेरे दिल से पूछती है तो उसके साथ रहने को मेरा मन नहीं करता ।''[3]

प्रमिला अपने बच्चों के लिए जीवन को नये सिरे से व्यवस्थित करने में जुट जाती है । नारंग साहब ने उसको दवाइयों की दुकान खोलने के लिए बीमा-कम्पनी से मिले सात हजार रुपये दे दिये थे और उसे आत्मनिर्भर होने के लिए प्रोत्साहित किया ।

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 195

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 195

3- कड़ियाँ — भीष्म साहनी —पृ० 197

प्रमिला का नये काम के प्रति उत्साह और स्थिर मनोस्थिति देखकर सतवंत को लगने लगा कि —— ''जिन्दगी का फासला लम्बा था, सतवंत को लगा जैसे उसकी सहेली दम लेने के लिए किसी पड़ाव पर रुकी है, अभी उसे बहुत दूर जाना है, पर सतवंत को विश्वास था कि वह चल पायेगी। अपने पैरों पर चलती हुई बहुत-सी मंजिलें काट डालेगी।''[1]

व्यक्ति यदि जीवन की किन्हीं समस्याओं को न सुलझा सके, अथवा जिन समस्याओं का समाधान खोजते-खोजते हार जाये और सफलता न प्राप्त होने पर जीवन के प्रति निराशावादी रवैया लेकर चलना मात्र मूर्खता के और कुछ भी नहीं। जीवन विकासमान और परिवर्तनशील है। मानव की जिजीविषा उसे समयानुसार परिवर्तनों के साथ परिवर्तित होने के लिए उत्साहित करती रहती है। सफलता-असफलता जीवन के हर मोड़ पर उपस्थित होती है, उनसे डर कर यथार्थ से मुख नहीं मोड़ा जा सकता। प्रमिला जीवन को नये नज़रिये से देखती है। परंपरागत विचारधारा व दृष्टिकोण को लेकर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रमिला के लिए जीवन-पथ पर अधिक दूरी तक निरन्तर अग्रसर होना, संभव नहीं हो पाता। पति और सन्तान के सुख को अपना सुख मानकर चलने वाली सरल स्वभाव की यह स्त्री मोहभंग की स्थिति से गुजरती है। जीवन में जो नहीं होना चाहिए, वही सब उसके साथ होता है। उसका भावुक हृदय पति के क्रूर व्यवहार से आहत होता है। वह मानसिकरूप से त्रस्त रहती है। अपने त्रास और भय को वह स्वयं ही समाप्त कर सकती है, ऐसा उसे आभास होने लगता है।

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 200

जीवन की वास्तविकता से वह अवगत हो जाती है । — '' वास्तविक संसार में बड़ा बीहड़ था, दिल को चौबीस घण्टे चाटते रहने वाली चिन्ता थी, और एक प्रकार की अनिश्चितता जिसमें व्यक्ति सारा वक्त डोलता-सा रहता था । संभलकर चलने वाले को भी ठोकरें लगती रहती थीं, मनुष्य सोचता है कि सपाट, साफ-सुथरी सड़क पर चल रहा है, पर वास्तव में वहाँ पत्थर और काँटे और कपचियाँ बिखरी रहती हैं, जिन से अकारण ही पैर छिलते रहते हैं ।''[1]

अपने दायित्वहीन भाई और निर्बल असहाय पिता की स्थिति से वह अवगत है । अपने जीवन के प्रति सचेत होकर वह जीवन की कठिनाइयों को स्वयं सुलझाने के लिए अग्रसर होती है । महेन्द्र के जीवन की भटकन अब उसे नहीं सताती । वह भविष्य को संवारने के लिए जुट जाती है ।

भारतीय समाज में प्रमिला जैसी स्त्री के लिए विडम्बनाएं और विषमताएं अपना विकराल रूप धारण किये खड़ी रहती है । उनसे बचने का प्रयास नारी स्वयं सशक्त बन कर करें तो उचित होगा, कोई अन्य उसकी मदद करने नहीं आयेगा । पुरुष-समाज नारी का सदियों से शोषण करता आया है और नारी को अधीनस्थ बनाये रखने के सभी प्रयास किये जाते रहे हैं । शारीरिक एवं मानसिक दोनों स्तरों पर नारी शोषण का शिकार बनती है । अपने को इस शोषण से मुक्त करने के लिए नारी को आत्मनिर्भर होना अति आवश्यक है । पुरुष आश्रित

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 120

नारी कभी भी इस शोषण से मुक्त नहीं हो पाती । आज की सुशिक्षित नारी अपनी स्वतन्त्रता व अधिकारों के प्रति पूर्णतः जागरूक है । वह स्वयं समाज की रूढ़ियों को तोड़कर अपने आपको उससे मुक्त करवाने में जुटी है । आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भावुकता अपना अर्थ खोती जा रही है । नारी को भी अत्यधिक भावुकता के सैलाब में न बहकर मस्तिष्क का इस्तेमाल करना चाहिए । जागरूक विवेक ही उसे सही राह सुझा सकता है ।

कड़ियाँ में पुरुष अधीन एवं उसके आश्रित प्रमिला जैसी स्त्री की स्थिति के वर्णन के साथ भीष्म साहनी ने कामकाजी आत्म निर्भर, अविवाहित स्त्री के जीवन की समस्याओं और विडम्बनाओं का उल्लेख भी किया है । सुषमा वह नारी पात्र है जो महेन्द्र के आफिस में कार्यरत है । वह महेन्द्र को अपने प्रेम पाश में बांधती है । महेन्द्र पैंतीस साल की उम्र में भी सुषमा के बारे में सोचकर पुलकित होता रहा । शेर गुन-गुनाता रहा । सुषमा भी उसे रिझाने के लिए नयी - नयी साड़ियाँ बदलती शरारतें करती । . . . . . सुषमा महेन्द्र का प्यार अधिक दिन तक चल नहीं पाया । . . . . . अपने बीमार पिता के कारण सुषमा नौकरी छोड़कर जा नहीं सकती और न वर्मा को देहदान करने से इन्कार कर सकती थी ।''[1]

आरंभ में सुषमा महेन्द्र के प्रति पूर्णतः समर्पित थी । महेन्द्र को अपना बनाने के लिए वह तरह-तरह के स्वांग भर उसे भरमाती थी ।

''तुम्हारी पत्नी तुम्हारी देख-भाल नहीं करती, सुषमा ने उलाहने के से स्वर में कहा, फिर गम्भीर होकर बोली — '' तुम्हें कोई क्लेश तो नहीं,

---

1- सचिता - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में काम-काजी नारी — धनराज मानधाने — पृ० 28

महेन्द्र ? तुम अपने सारे क्लेश मुझे दे दो । उसने फिर अलसाई, टूटती आवाज़ में कहा ।''[1]

x x x

''यह मुझे क्या हो गया है, महेन्द्र ? मैं दिन-रात तुम्हारे इर्द-गिर्द घूमती रहती हूँ, मैं अपना सब कुछ खो बैठी हूँ ।''[2]

सुषमा प्रमिला से भी मिलती है । उसकी गृहस्थी देखती है । सुषमा के मन में भी नारी-सुलभ इच्छा उमड़ती रहती है कि उसका अपना कहने को कोई घर-परिवार हो, महेन्द्र जैसा पति हो किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न होती हैं कि उसे वह सब मिल नहीं पाता । वह जो उसके पास है उसको, जो उसके पास नहीं है, उसके लिए खोना नहीं चाहती । वह भी जीवन में भटकती है किन्तु महेन्द्र की तरह नहीं । महेन्द्र और उसका प्रेम शारीरिक स्तर पर होता है जो ज्यादा दिन तक टिका नहीं रह पाता । जल्द ही वासना की धुंध दोनों के जीवन से छटने लगती है । महेन्द्र सुषमा से विवाह नहीं करना चाहता और सुषमा महेन्द्र की अस्थिर मनोस्थिति से भी परेशान हो उठती है ।

''अगर मुझसे ऊब गये हो तो मेरे पास नहीं आया करो । मैं 'यों' भी शीघ्र ही यहाँ से चली जाऊँगी ।.....''[3]

सुषमा और महेन्द्र संबंध हीनता की स्थिति को लेकर बहुत दूर तक एक साथ नहीं चल पाते । इसके अतिरिक्त सुषमा के जीवन में वर्मा जी भी प्रवेश कर जाते हैं । सुषमा को जीवन की विषम परिस्थितियों से समझौता करके

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 13

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 13

3- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 44

जीना पड़ता है। महेन्द्र के चाहते हुए भी वह अपनी नौकरी बनाये रखने के लिए वर्मा जी जैसे बूढ़े लिजलिजे व्यक्ति के समक्ष समर्पण करती है।

''सुषमा की दृष्टि में वर्मा की तुलना में महेन्द्र में अभी भी कहीं अधिक आकर्षण था। वर्मा लिजलिजा था, बूढ़ा था, पिलपिला था, गंजा था, उसकी बातों में कोई रस नहीं था, स्फूर्ति नहीं थी... ...।''[1]

किन्तु अपनी नौकरी बचाने व तरक्की पाने के लिए वर्मा जैसे व्यक्ति का सत्कार्य उसे स्वीकारना पड़ता है। अपने बीमार पिता के इलाज के लिए शारीरिक एवं मानसिक दोनों स्तरों पर उसका शोषण होता है।

सतवंत की दृष्टि में सुषमा जैसी लड़कियाँ ही बसी हुई गृहस्थी उजाड़ती हैं — ''आज कल दफ्तरों की लड़कियाँ भी तो इन्हें दम नहीं लेने देतीं। बड़ी तेज़ हैं, मुझ्याँ हमारे घर बरबाद करने पर तुली हुई हैं, इतनी बेधड़क हो गई हैं, खुद मर्दों का हाथ पकड़ लेती हैं।''[2]

सुषमा प्रमिला की गृहस्थी को उजाड़ना नहीं चाहती। किन्तु जब पति-पत्नी के बीच संशय की दीवार खड़ी हो जाये तो कारण पति के जीवन में आई अन्य स्त्री ही मानी जायेगी। सुषमा और महेन्द्र के प्रगाढ़ संबंधों से प्रमिला व महेन्द्र के दाम्पत्य जीवन में टूटन आ जाना स्वाभाविक ही था।

असफल दाम्पत्य जीवन के कुपरिणाम पति-पत्नी के जीवन में विष तो भरते ही हैं, इसके अतिरिक्त उनकी संतान पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। महेन्द्र और प्रमिला के झगड़े में पप्पू का जीवन उलझ कर रह जाता है। पप्पू

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 149

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 68

के शान्त और सहज जीवन में अचानक बवंडर उठ खड़ा होता है । वह अपने माता-पिता के झगड़े देखकर डर जाता है । उसके मस्तिष्क पर घर के अशान्त वातावरण का बुरा प्रभाव पड़ता है । वह हीन शंका और कुण्ठाओं का शिकार बनता है । उसके व्यवहार में धृष्टता और जिद आती जाती है । माँ से उसे प्यार मिलता है और पिता से नफ़रत और प्रताड़ना । बोर्डिंग में दाखिल करवा देने से माँ का साथ छूट जाता है । पिता जब भी मिलने आता है तो बजाय दो मीठे बोल प्यार के बोलने के, झापड़ रसीद करता है । पिता से भयभीत रहता है । वह अपनी पुरानी आदतें छोड़ नहीं पाता और दब्बू किस्म के बच्चे की तरह हरदम डरा सहमा रहता है ।

"पप्पू को स्कूल में दाखिल हुए छः महीने बीत चुके थे लेकिन वह अभी तक न तो स्कूल का रहन-सहन सीख पाता था, न अपने पुराने भौंड़े संस्कार छोड़ पाया था ।"[1]

× × ×

– बेहद डरा-सा वह पिता के चेहरे की ओर देखे जा रहा था और आँखें मिचकाये जा रहा था । बाप की धुड़की से वह बेहद डर जाता था । सहसा उसकी आँखें मुँदने सी लगी थी और महेन्द्र को अजीब 'सुर-सुर' का शब्द सुनाई देने लगा । तभी महेन्द्र की नज़र उसके पैरों की ओर गयी । पप्पू की पेशाब निकल गयी थी और वह निकर में से चून्चू कर दायीं टाँग के साथ-साथ बहती सीधी मोज़े में चली जा रही थी ।

"सुअर के बच्चे, यह क्या किया ? तुझे स्कूल में यह सिखाते हैं ?"[2]

1- कड़ियाँ – भीष्म साहनी – पृ0 172

2- कड़ियाँ – भीष्म साहनी – पृ0 173

महेन्द्र का बचपन जिन विकट परिस्थितियों में गुजरा था उन्हीं में पप्पू का न गुजरे, महेन्द्र इसके लिए प्रयास करता है। किन्तु पप्पू का बचपन उससे ज्यादा विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों से गुजरता है। पप्पू उसी की तरह पंगु व्यक्तित्व लिये, जीवनभर कुण्ठाओं और हीन भावनाओं से घिरा रहेगा, इसका आभास महेन्द्र को होने लगता है। पप्पू के मानसपटल पर अपने माता-पिता के झगड़े और पिता के दुर्व्यवहार का बुरा प्रभाव पड़ता है। मिसेज़ गुप्ता के बच्चों की तुलना में पप्पू महेन्द्र को निकृष्ट स्तर का बच्चा लगता है, जिसे कोई तहज़ीब और तमीज़ नहीं है। पप्पू की स्थिति देखकर महेन्द्र मात्र अपने भाग्य को कोसने के अलावा कुछ नहीं कर पाता।

महेन्द्र और प्रमिला के दाम्पत्य जीवन के बिखर जाने से प्रमिला के पिता नारंग साहब के शान्त जीवन में भी हलचल उत्पन्न हो जाती है। अपनी वृद्धावस्था में यह नयी समस्या को सम्मुख खड़ा देख पहले तो नारंग साहब घबरा जाते हैं। — "मैं तुम्हारी मुश्किल हल नहीं कर सकता, ये मामले बड़े टेढ़े होते हैं। उन्होंने साफ दो-टूक भाषा में कहा, — कचहरी में मामला ले जाऊँ तो जो थोड़ी-बहुत पूँजी है वह भी खत्म हो जाएगी, और बने बनाएगा भी कुछ नहीं। तुम या तो उसके पास लौट जाओ, या कोई छोटा-मोटा काम देख लो। यहाँ आकर तुमने बिल्कुल बच्चों वाली बात की है।"[1]

प्रमिला की दशा देख कर वह भी दुःखी है किन्तु वह बेटी की मदद करने में पीछे नहीं रहते। धीरे-धीरे बदलती परिस्थितियों के साथ समझौता कर अपनी बेटी को आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रोत्साहन एवं पूर्ण सहयोग देते हैं।

1- कड़ियाँ - भीष्म साहनी - पृ0 99

नारंग साहब परंपरावादी विचारों को लेकर चलने वाले व्यक्ति हैं। पेशे से वकील हैं। पत्नी मर चुकी थी और एक लड़का व एक लड़की का पालन उन्होंने ही किया था। बेटा तो स्वार्थी और दायित्वहीन निकला किन्तु बेटी उनके प्रति आदर व सहानुभूति रखती थी। प्रमिला की मुसीबत के समय वह पूर्ण सहयोग देते हैं। प्रमिला के पागल हो जाने पर वह स्वयं भी विचलित हो उठे थे। किन्तु धीरे-धीरे सब ठीक हो गया था। महेन्द्र और प्रमिला का पुनर्मिलन हो जाये, उसके लिए वह भी प्रयास करते हैं किन्तु उनका प्रयास सफल नहीं हो पाता। वह कचहरी के चक्करों में नहीं पड़ना चाहते किन्तु बेटी के भविष्य की चिन्ता उन्हें सदा रहती है। बीमा कम्पनी से मिले सात हज़ार रुपये बेटी को देकर दवाईयों की दुकान बनवाने में पूर्ण सहयोग देते हैं।

नारंग साहब अन्तर्मुखी वृत्ति के व्यक्ति हैं। जीवन को उसी पुराने ढर्रे पर चलाना चाहते हैं, जिस पर आरंभ से चले आये हैं। किसी प्रकार का भी परिवर्तन उन्हें विचलित कर देता है। किन्तु प्रमिला के जीवन में आई कठिनाईयों को वह धीरज के साथ सुलझाने का प्रयास करते हैं।

भीष्म साहनी के उपन्यास में पारिवारिक संबंधों के खोखलेपन और मानवीय मूल्यों से उठ रहे आज के व्यक्ति का अंकन किया है। मध्यवर्गीय संस्कार और संचित का संघर्ष महेन्द्र के जीवन को बदल देता है। लेखक ने महेन्द्र को उस व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है जो नये और पुराने के बीच अटक रहा है और जीवन के प्रति असन्तुष्ट है। नरीशाह, प्रमिला का चाचा और महेन्द्र के द्वारा ऐसे पुरुष वर्ग की मानसिकता का पर्दाफाश किया है जो स्त्री को मात्र भोग की वस्तु मानते हैं। सेक्स को जीवन में बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। स्त्री को हर स्थिति में शोषण करते हैं। महेन्द्र स्वयं को नरीशाह और चाचा जैसे लोगों की पंक्ति में खड़ा नहीं करना चाहता। उसकी अव्यवस्थित मनः स्थिति उसे किसी

की श्रेणी में खड़ा नहीं रहने देती । वह स्त्री को कैद करके रखने में विश्वास नहीं करता किन्तु साथ ही स्त्री के लिए संशय व अविश्वास की शंका भी उसके मन में रहती है । स्कन्द प्रेम में विश्वास रखने वाला यह पुरुष स्वयं तो किसी बन्धन में बँधना नहीं चाहता किन्तु सुषमा को अपनी इच्छानुसार इस्तेमाल करना भी चाहता है । वह स्वयं दूसरी स्त्री से प्रेम करता है और प्रमिला को भी ऐसी छूट देता है कि जो उसकी इच्छा हो वह करे, किन्तु प्रमिला के दूसरे बच्चे को अपना बच्चा स्वीकार नहीं करता । विवाह के बन्धन को कोई अहमियत नहीं देता । आत्मतुष्टि के लिए जीवन भर भटकता रहता है ।

भीष्म साहनी ने 'कड़ियाँ' में टूटते दाम्पत्य जीवन और वैवाहिक संस्थाओं के प्रति पनप रहे अविश्वास की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । वर्तमान समाज में विवाह की स्थिति, वैवाहिक बन्धन की पवित्रता और उसके प्रति लोगों के अटूट विश्वास में आ रही कमी का उल्लेख इस उपन्यास में हुआ है । पारिवारिक संबंधों में बढ़ रहे तनाव और बदलते मानवीय मूल्यों का व्यापक प्रभाव आज के व्यक्ति के मनःस्थल पर पड़ा है । प्रमिला के चाचा के अनुसार — "मैं समझता हूँ विवाह की प्रथा अब ज्यादा देर टिकेगी नहीं, " उसने दार्शनिक अन्दाज में कहा ..... ।"[1]

स्त्रियों का शिक्षित होना व आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ आज के भौतिक जीवन में बढ़ रही बौद्धिकता व विज्ञान की तरक्की को भी प्रमिला का चाचा वैवाहिक संस्थाओं के लिए खतरा मानता है ।

" अव्वल तो, जहाँ औरत भी काम करती हो और मर्द भी, वहाँ आर्थिक निर्भरता खत्म हो जाती है । रह गई बच्चों की बात, उनका पालन सरकार अपने हाथों में ले सकती है । आज नहीं तो कल लेगी, और .... इस

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ० 85

पर उसने हँस कर कहा — ''अगर बच्चे बोतलों में पैदा होने लगें तो ब्याह और गृहस्थी की जरूरत ही कहाँ रह जाएगी ?''[1]

वस्तुतः वर्तमान काल में विवाह की स्थिति — ''साँप के मुँह में छिपकली, छोड़े तो अन्धा, खाये तो मौत'' सी हो गई है ।[2]

भीष्म साहनी ने सशक्त भाषा शैली में भौतिक जीवन की विषमता, मानव-मन के द्वन्द्व और तेजी से बदलते सामाजिक व नैतिक मूल्यों में आ रहे परिवर्तन से उच्च मानवीय-मूल्यों में ह्रास व पारिवारिक संबंधों में बढ़ रही कटुता से जिन विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों का निर्माण होता है, उसका उल्लेख कड़ियाँ उपन्यास में स्वाभाविकता एवं सजीवतापूर्वक किया गया है ।

1- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 85

2- कड़ियाँ — भीष्म साहनी — पृ0 85

तीसरा अध्याय

'तमस'-मानवीय गरिमा और साम्प्रदायिकता

मानवीय मूल्यों के लिए अहितकर, विघटनकारी तत्वों में साम्प्रदायिकता प्रमुख है। एस० एम० चंद के मतानुसार — ''साम्प्रदायिकता समाज के अन्दर युग-युगों की रूढ़िवादिता, जीर्ण-शीर्ण परंपराओं की रक्षा के लिये उत्सुक निरक्षर और अज्ञान ग्रस्त लोगों की प्रगति की राह रोकने के लिए पूँजीवाद तथा उसकी छत्र-छाया में पलने वाले प्रतिक्रियावाद द्वारा अपनी लक्ष्य सिद्धि हेतु उपयोग में लाने का फल है।''[1] निर्धन और निर्बल जन-सामान्य को धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आधार पर वर्गों में विभाजित करके फिर उनमें वर्ग संघर्ष की स्थिति पैदा करने वाला यह शोषक वर्ग उनका कई प्रकार से शोषण करता है। ''साम्प्रदायिकता शुद्ध धार्मिक विषय नहीं है। इसके पीछे आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ निहित हैं। धर्म और संस्कृति का नाम लेकर दोनों सम्प्रदायों के स्वार्थी तत्व अपने राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति करते रहते हैं।''[2] ''साम्प्रदायिकता, मूलतः संकीर्णता, असहिष्णुता और अनुदारता है जो प्रायः आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक कारणों से शुरू होकर धार्मिक-सांस्कृतिक विद्वेष के रूप में प्रकट होती है।''[3] शासक वर्ग अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए साम्प्रदायिकता जैसे अमानवीय शस्त्रों का प्रयोग करता आया है। भारत में अपनी सुविधाजनक स्थिति को बनाए रखने के लिए अंग्रेज प्रशासक ने धार्मिक आधार पर बने वर्गों में एक-दूसरे के प्रति विभ्रम व संकीर्णता

1- साम्प्रदायिकता : समस्या और समाधान - पृ० 5

2- हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना - डा० कुंवरपाल सिंह -पृ० 135

3- साम्प्रदायिकता की समस्या और राही मासूम रज़ा के उपन्यास - रामनाथ महतो - पृ० 3

को उत्पन्न करते हुए, उनको आपसी विवादों में उलझा कर एक-दूसरे में फूट डलवा कर तीन शतकों तक शासन किया । भारतीय जब जागरूक हुए और अपनी स्थिति का ज्ञान उन्हें, तो सभी सम्प्रदायों के लोग, चाहे वे हिन्दू थे, मुस्लिम अथवा सिख, स्वयं को इस साम्राज्यवादी क्रूर शिकंजे से मुक्त करवाने के प्रयत्नशील होने लगे । सन् 1857 से आज़ादी के लिए प्रयास आरंभ हुआ वह सन् 1947 तक विभिन्न कठिनाईयों से गुजर कर सफल हो पाया । इस आज़ादी के साथ देश-विभाजन का जो दर्द भारतीय जनता को मिला वह कई शताब्दियों तक भुलाया नहीं जा सकेगा ।

भारत - विभाजन के दौरान हुए साम्प्रदायिक दंगों और क्रूर अमानवीय कृत्यों का परिणाम यह हुआ कि हज़ारों की संख्या में निरीह लोगों की हत्याएँ हुईं तथा हजारों-हजार परिवारों की मालाएँ बिखर गईं ।

यथार्थवादी उपन्यासकार भीष्म साहनी ने देश-विभाजन की पृष्ठभूमि को कथ्य के रूप में लेकर, तत्कालीन जीवन के यथार्थ की सशक्त कलात्मक अभिव्यक्ति 'तमस' उपन्यास में प्रस्तुत की है ।

'तमस' के परिचय पत्र में बताया गया है कि यह केवल पाँच दिनों की कहानी है । यह कहानी देश-विभाजन से पूर्व घृणा, विद्वेष, अविश्वास, कूटनीति और दुर्भाव के बोझिल अँधेरे में डूबे पाँच दिनों का मर्मस्पर्शी आख्यान है । सदियों से चले आ रहे साम्प्रदायिक द्वन्द्व का यह एक सशक्त और मार्मिक उदाहरण है ।

देश-विभाजन पर जो प्रतिक्रियाएँ हुईं उनका वर्णन अनेक भाषाओं की रचनाओं में मिलता है । यशपाल का 'झूठा-सच', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', खुशवंत सिंह का अंग्रेजी उपन्यास 'ए ट्रेन टु पाकिस्तान', रामानंद सागर का 'और इंसान मर गया', तथा कृष्ण चंदर, करतार सिंह

दुग्गल, अमृता प्रीतम, सआदत हसन मंटो, राजेन्द्र सिंह बेदी, उपेन्द्र नाथ 'अश्क' आदि लेखकों की अनेकानेक कृतियों में देश-विभाजन के समय हुए मानवता के हनन और अमानुषिक वातावरण का चित्रण किया गया है। भीष्म साहनी ने भी 'तमस' में पाँच दिन के कथानक में धर्म और राजनीति के क्रूर रूप का अंकन कर मानवीय मूल्यों पर छाये साम्प्रदायिक अंधकार के वीभत्स रूप की नकाब उलट दी है।

'तमस' अर्थात् 'अंधकार', साम्प्रदायिकता के इस तमस में एक शहर और उसके आस-पास के गाँव-कस्बे ही नहीं, अपितु वहाँ के एक-एक शख्स का विवेक डूबा रहा। उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है। इसमें पंजाब के एक शहर और उसके अंचल में बसे तीन-चार गाँवों की कहानी है। यह शहर पश्चिमी पंजाब का ही जान पड़ता है। एक स्थल पर डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड ने इस ओर संकेत किया है। —''उस पहाड़ के पीछे करीब सत्रह मील की दूरी पर टैक्सिला के खण्डहर हैं।''[1]

उपन्यास के पहले खंड में, नगर में, साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना कैसे उभरी, अंग्रेजी नौकरशाही ने वैमनस्य की इस आग को कैसे भड़काया आदि के बारे में बताया गया है जिसके परिणाम-स्वरूप हिन्दू-मुसलमान सम्प्रदाय आपस में एक-दूसरे से कटते चले गए। एक सूअर के जवाब में एक गाय मारी जाती है। राजनैतिक गठबंधन इन वारदातों को रोक नहीं पाते। सम्प्रदाय-विशेष से प्रभावित राजनैतिक संगठन इस साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं और जानवरों से धीरे-धीरे बात आदमियों पर आ जाती है। एक हिन्दू की हत्या के जवाब

1- तमस – भीष्म साहनी – पृ० 38

पर एक मुसलमान कत्ल किया जाता है और फिर बहुत से हिन्दू-मुस्लिम, सिख मारे जाते हैं, स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े भी इस हिंसक युद्ध का शिकार होते हैं।

उपन्यासकार ने आरंभ में ही इस स्थिति को स्पष्ट किया है कि ऐसे दंगों की शुरुआत हिन्दू-मुस्लिम स्वयं नहीं करते अपितु कोई तीसरी शक्ति करती है। तत्कालीन परिस्थितियों में यह शक्ति अंग्रेज प्रशासक के रूप में थी। शहर में हो रहे भयानक दंगों से जहाँ हर व्यक्ति त्रस्त था, वहाँ अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड शहर से दूर अपने बंगले में आराम कर रहा था। वह प्रसन्न था क्योंकि उसका रचा हुआ षड्यंत्र सफल हो रहा था। हिन्दू-मुसलमान में जब किसी भी स्तर पर एकता की भावना दृष्टिगोचर हुई तभी अंग्रेज प्रशासक को अपने शासन की जड़ें हिलती नज़र आईं। इन दोनों सम्प्रदायों में वैमनस्य की भावना को उत्पन्न करना ही अंग्रेज शासक वर्ग का ध्येय था। दोनों सम्प्रदायों में अलगाव की सृष्टि करने की चेष्टा रिचर्ड ने भी की क्योंकि यह उसका नहीं था। यहाँ के लोगों के प्रति किसी प्रकार की कोमल भावना उसके मन में नहीं थी। लोग चाहे मारे जायें या लूटे जायें इससे उसे कोई सरोकार नहीं था, उसका मुख्य लक्ष्य अपने शासन को मजबूत बनाना था। वैसे भी अंग्रेजों की तो आरंभ से नीति रही कि "फूट डालो और शासन करो।"

भारत-वासियों में आज़ादी की भावना जिस तेजी से उभर रही थी, उसे दबाने का क्रूरतम प्रयास अंग्रेजों ने किया। साम्प्रदायिकता के कारण उत्पन्न अराजकता की स्थिति से जूझते देशवासियों में पनप रही राष्ट्रीयता की भावना पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। पढ़े-लिखे लोग समाज में नवजागरण का प्रयास कर रहे थे। वे जनता को राष्ट्रीयता एवं राजनीतिक के प्रति जागरूक कर रहे थे। जहाँ एक तरफ जन-मानस को उनकी बंधी दायरों से बाहर निकालने की

चेष्टा की जा रही थी, वही दूसरी ओर परंपरा से चली आ रही रूढ़ियों, धार्मिक संकीर्णता व सोचने आडम्बरों का सहारा लेकर अंग्रेज शासक भारत-वासियों के दिलों में साम्प्रदायिकता का विष घोलने में सफल हो रहा था।

—"सुनो। सभी हिन्दुस्तानी चिड़चिड़े मिज़ाज के होते हैं। छोटे से उकसाव पर भड़क उठने वाले, धर्म के नाम पर खून करने वाले, सभी व्यक्तिवादी होते हैं,.....।"[1]

भारतीयों को उन्हीं के हथियारों द्वारा आहत करने में शत्रु सफल हो गया था और भारत-वासी विवेकशून्य होकर अपने शत्रु की कूटनीति न समझ कर, उसके शिकार बन रहे थे। अंग्रेज जानता था कि हिन्दुस्तानी लोगों की मानसिकता किस प्रकार की है तथा अलग-अलग धर्मों के लोग आपस में किस तरह से एक-दूसरे से भिन्न हैं। इसी भिन्नता की आड़ लेकर वह अपना मतलब साधने में सफल रहा। उसकी सफलता की कहानी ही 'पाँच दिनों' के साम्प्रदायिक दंगों के रूप में 'तमस' में चित्रित की गई है।

सम्प्रदाय विशेष से प्रभावित राजनैतिक संगठनों का भी अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिएसाम्प्रदायिक तनाव बढ़ाने में पूर्ण योगदान रहा। 'हिन्दू महासभा', 'मुस्लिम लीग', 'सिख समाज', 'आर्यसमाज' जैसे धार्मिक संगठनों तत्कालीन कार्य-कलापों को भी देश-विभाजन के मुख्य कारणों में गिना जाता है। भीष्म साहनी ने तत्कालीन राजनैतिक संगठनों का भी पूर्ण तटस्थता से यथार्थ रूप

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 122

'तमस' में प्रस्तुत किया है ।

सदियों से सुलग रही साम्प्रदायिकता की चिंगारी को भड़काने में अंग्रेज शासकों का षड्यन्त्र सफल रहता है । हिन्दुस्तानी जन-मानस के विषय में वह अच्छी जानकारी रखता है, स्वयं वह दावा ही नहीं करता, अपितु एक स्वार्थी व्यक्तिवादी भारतीय के द्वारा अपनी सोची हुई चाल को क्रियान्वित भी करवाता है । यह स्वार्थी शख्स मुराद अली है । ''आग लगाने में पहल करने वाला, जलते पर हाथ सेंकने वाला और बुझाने के प्रयत्नों का अगुआ एक ही व्यक्ति मुराद अली, एक मुसलमान, एक गढ़ि का कदूम चेला ।''[1] मुरादअली भारतीय इतिहास में देशद्रोही एवं विश्वासघाती लोगों की परंपरा को लेकर चलने वाले व्यक्तियों में से है, जो मात्र अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही जीते हैं । मुराद अली गरीब नत्थू द्वारा एक सुअर मरवा कर जमादार के हाथों मस्जिद के सामने फिंकवा देता है । नत्थू इस कृत्य से अनभिज्ञ है । मुराद अली ने तो उसे कहा था कि — ''हमारे सलोतरी साहिब को एक मरा हुआ सुअर चाहिये, डाक्टरी काम के लिए ।''[2] वह मुराद अली का कहना टाल भी नहीं सकता था । पूरे पाँच रुपये नकद जो मिले थे । मृत सुअर का मस्जिद की सीढ़ियों के सामने पड़ा मिलने पर शहर में हलचल उत्पन्न हो जाती है और एक तनाव सा छा जाता है । नत्थू भी मानसिक रूप से तनावग्रस्त हो जाता है । वह स्वयं को इसके लिए जिम्मेदार मानता है । उसे एक गहरा अवसाद अन्दर-बाहर से जकड़े रहता है । —'' कोई धूमिल अस्पष्ट-सी अकुलाहट थी जो नत्थू के दिल को अभी भी मथ रही थी । इसी धुकधुकी के कारण वह सड़कों पर चक्कर लगाता रहा था, इसी कारण उसने शराब पी थी । पत्नी के साथ बैठने पर भी अन्दर-ही-अन्दर कोई शंका उसका कलेजा चाट रही थी ।''[3]

1-हिन्दी उपन्यास — उत्तरशती की उपलब्धियाँ —डा० विवेकी राय, पृ० 177
2- तमस — भीष्म साहनी — पृ० 10
3- तमस — भीष्म साहनी — पृ० 117

शहर का आमजीवन, मृत सुअर का मस्जिद के सामने फेंके जाने के बाद अस्त-व्यस्त होना आरंभ हो जाता है। कांग्रेस पार्टी के सदस्य सभी में सद्भाव पैदा कर शहर में एक आदर्श वातावरण बनाने का प्रयास करते हैं। उनका अभियान विफल सिद्ध होने लगता है। जहाँ उनके कार्यों पर 'आफरीन-आफरीन कहते लोग नहीं थकते थे, वहीं लोगों द्वारा अब उन पर पत्थरों की बौछार आरंभ हो गई थी। इसका कारण जब मालूम हुआ तो आज़ादी के लिए उत्पन्न उत्साह ठण्डा पड़ने लगा और शहर में शांति स्थापित करने के प्रयास होने लगे। शहर के जाने-माने लोग, राजनैतिक पार्टियों के सक्रिय सदस्य बख्शी साहब, ध्यात बख्श, लक्ष्मी नारायण, हकीम अब्दुलगनी, सरदार बिशन सिंह आदि मिलकर डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड के पास शहर में शांति स्थापित करवाने की गुज़ारिश लेकर गये किन्तु मात्र बातें करके ही रिचर्ड ने उन्हें लौटा दिया। अंग्रेज हिन्दू-मुस्लिम के आपसी झगड़े में दखल नहीं देना चाहता था। इन झगड़ों से ही तो उसकी सरकार को लाभ था। बख्शी का कहना है कि —''शहर की रक्षा तो आप ही की जिम्मेदारी है।''[1] तो रिचर्ड बात यह कह कर टालता है कि —''ताकत तो इस वक्त पंडित नेहरू के हाथ में है।''[2] रिचर्ड को तरह-तरह के सुझाव दिये जाते हैं कि या तो वह फौज बुलवा ले, शहर में कर्फ्यू लगवा दें अथवा एक हवाई जहाज ही शहर के ऊपर से उड़ जाए, जिससे लोग सहम जायें और हिंसात्मक कृत्य बंद हो जायें। अमरीकी पादरी प्रिन्सिपल हरबर्ट भी इस समस्या को मानवीय दृष्टि से देखते हुए रिचर्ड से शांति स्थापित करने का आग्रह करता है। इससे रिचर्ड शांति स्थापित करने का आश्वासन देता है किन्तु स्वयं कुछ भी प्रयास नहीं करता। शहर में तनाव

1- तमस- भीष्म साहनी — पृ0 81

2- तमस- भीष्म साहनी — पृ0 81

थोड़ा थमने के बाद फिर उग्र रूप धारण करने लगता है।

"बख्शी जी देर तक ठिठके खड़े रहे। फिर धीरे से बोले —
"लगता है शहर पर चीलें उड़ेंगी। आसार बहुत बुरे हैं।"[1]

शहर में आम जीवन अव्यवस्थित व असामान्य होने लगता है। एकाएक घटित घटनाएँ मानवीय संबंधों में एक बहुत गहरी खाई उत्पन्न कर देती है। धर्म और राजनीति मानवीय मूल्यों को पाँव तले रौंद कर अपने क्रूरतम रूप में समक्ष आते हैं। "परिस्थितियों के दबाव में सूखते जाने वाले स्नेह सूत्रों और टूटते जाने वाले मूल्यों एवं आदर्शों के कारण उत्पन्न होने वाला दर्द भीष्म साहनी ने उत्कृष्ट रूप में व्यक्त किया है।"[2] धर्म के प्रति अंधविश्वास मानव को संकीर्णता के कटघरे में कैद कर लेता है। देश-विभाजन इसी संकीर्णता और धार्मिक एवं राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए किये गए कुटिल प्रयासों का परिणाम था। गांधी जी का यह कहना कि "पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा और दूसरी ओर साम्प्रदायिक शक्तियों से प्रभावित लोग ज़ोर-शोर से "पाकिस्तान-जिन्दाबाद" अथवा 'लेके रहेंगे पाकिस्तान' का दावा कर रहे थे। अहिंसा, शांति एवं सद्भाव बनाये रखने की अपील अर्थहीन होती जा रही थी। लोग साम्प्रदायिकता की अंधी आंधी में बहते चले जा रहे थे। हिन्दू-मुस्लिम दोनों विद्वेष एवं घृणा की भावना से उद्वेलित होकर विवेकशून्य हो हत्या, लूटपाट इत्यादि हिंसात्मक कृत्य करने लगे थे। दोनों पक्षों पर साम्प्रदायिकता पूरा प्रभाव डाल रही थी।

हिन्दुओं द्वारा अंतरंग सभाएँ बुलाई जाने लगीं। हिन्दू और सिखों को अपनी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए, इसके लिए प्रयास होने लगे हैं।

1- तमस - भीष्म साहनी -पृ० 63
2. उपन्यास : स्थिति और गति - डॉ० चन्द्रकांत बांदिवडेकर - पृ- 398.

वानप्रस्थी जी जहर उगलने लगते हैं।

—''फैलायि धीर पाप यहाँ मुसलमीत ने
नेअमत फलक ने छीन ली, दौलत ज़मीन ने।''[1]

मुसलमान मस्जिद में लाठियाँ, भाले और तरह-तरह का असला बहुत दिनों से एकत्र कर रहे थे। हिन्दुओं को भी अपने बचाव के लिए कुछ करना चाहिए। इस पर वानप्रस्थी जी अपनी धीर-गंभीर आवाज़ में कहते हैं कि —''सबसे पहले अपनी रक्षा का प्रबंध किया जाना चाहिए। सभी सदस्य अपने-अपने घर में एक-एक कनस्तर कड़वे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें। उबलता तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अँगारे छत पर से फेंके जा सकते हैं..... ।''[2]

युवकों को लाठी सिखाने का सुझाव दिया जाता है। मास्टर देवव्रत हिन्दू-युवकों और किशोरों के मन में अपने स्वर्णिम अतीत की याद ताज़ा करवा कर आने वाले संकट से मुकाबले की शिक्षा देता है। लाला लक्ष्मी नारायण का पंद्रह वर्ष का लड़का रणवीर दीक्षा लेने के समय मुर्गी काटने का आदेश गुरु से पाता है। मास्टर देवव्रत उसे एक निर्जन स्थान पर ले जाता है। —''इधर दीवार के पास बैठ जाओ रणवीर और इस मुर्गी को काटो। दीक्षा से पहले तुम्हें अपनी मानसिक दृढ़ता का परिचय देना होगा।''

उन्होंने रणवीर को बाजू से पकड़ा और उसे आगे ले आए —''आर्य

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 65

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 66

युवकों के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों प्रकार की दृढ़ता की जरूरत है। छुरी हाथ में लो और उधर बैठ जाओ।...[1]

रणवीर को दीक्षा के साथ ही हिंसात्मक कृत्य करने की प्रेरणा भी मिलती है। मुसलमान म्लेच्छ है, हमारा दुश्मन है, इसलिए इसको समाप्त करना चाहिए —ये सब विचार उसके मस्तिष्क में बिठा दिये जाते हैं। मास्टर जी के मुख से वह वेदों की महिमा सुन चुका था और यह भी जानता था कि हिन्दू धर्म बहुत महान है। उसने योग शक्ति की महिमा भी सुनी थी जिसमें साधनालीन एक योगिराज ने उसकी समाधि भंग करने आए एक म्लेच्छ को अपने नेत्रों की दैवी ज्योति से खड़े-खड़े ही भस्म कर दिया था। इस प्रकार की कौतुक-कथाओं द्वारा एक मासूम किशोर के मानस पटल पर साम्प्रदायिक प्रभाव डाला जाता है, जिसके फलस्वरूप एक निर्दोष वृद्ध-फकीर का कत्ल हो जाता है। जिस प्रकार हिन्दू के लिए मुसलमान म्लेच्छ होता है उसी प्रकार मुसलमान के लिए हिन्दू काफिर। एक ओर जहाँ आर्यवीर दल नौजवानों को छुरे फेंकने और लाठियाँ चलाने की शिक्षा दी जाती थी तो दूसरी ओर मुस्लिमलीग हिन्दुओं को लूटने की योजनाएँ बना रही थी। जो कुछ भी हो रहा था, उसमें काफिरों का हाथ है, ऐसा मुस्लिम मान कर चलते हैं। इस प्रकार से हिन्दू-मुस्लिम अलगाव बढ़ता ही जाता है। एक हिन्दू का कत्ल पुल के पास किया जाता है, जिसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप एक निर्दोष लकड़ी की टाल पर काम करने वाला कश्मीरी मुसलमान मारा जाता है। तीस-पैंतीस पेटि में नगर के अन्दर पूरे छः खून हो जाते हैं। नगर की एक मंडी में आग लगा दी जाती है। आगजनी की घटना से शहर भर की स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ जाता है। "मुहल्लों के बीच लीकें खिंच गई थीं,

---

1- तमस — भीष्म साहनी - पृ० 73

हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमानों के जाने की अब हिम्मत नहीं थी और मुसलमानों के मुहल्ले में हिन्दू-सिख अब नहीं जा सकते थे । आँखों में संशय और भय उतर आये थे ।''[1]

× × ×

''सुअर की उस घटना से लाखों का नुकसान हुआ था । केवल मुसलमान ही नहीं सबकी दृष्टि बदल गई थी, एक-दूसरे के लिए सब अजनबी बन गये थे ।''[2]

कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यकर्त्ता कामरेड देवदत्त शहर की बिगड़ती परिस्थितियों से परेशान था । वह ही नहीं सरदार सोहन सिंह और मीर साद जैसे कुछ चरित्र सारी स्थिति को समझते हुए सतत प्रयत्न करते हैं कि शहर में अमन कायम हो किन्तु वे सफल नहीं हो पाते । ये लोग आम जनता की धार्मिक संकीर्णता एवं जड़ता को तोड़ नहीं पाते । हिन्दू-मुस्लिम के मन में बसे एक-दूसरे के प्रति घृणा, संशय और विद्वेष को समाप्त नहीं कर पाते । अपने को अपराधी समझने वाला नत्थू यह नहीं समझ पाता कि जो उससे हुआ वह अनजाने में हुआ । लेकिन लोग अब जानबूझ कर हिंसात्मक कार्य कर रहे हैं ।—

''मैंने जो कुछ किया वह अनजाने में किया, ये लोग जो आग लगा रहे हैं और राह जाते लोगों को मार रहे हैं, ये आँख खोलकर सब काम कर रहे हैं, ये क्यों बुरा कर रहे हैं ?''[3]

1- तमस – भीष्म साहनी – पृ० 135
2- तमस – भीष्म साहनी – पृ० 136
3- तमस – भीष्म साहनी – पृ० 139

उपन्यास के दूसरे खण्ड में देहातों में हुए दंगे-फसाद का जिक्र है। शहर में हो रहे साम्प्रदायिक झगड़े की आग धीरे-धीरे आस-पास के गाँवों को भी अपनी लपेट में लेने लगी थी। ढोल चलाही, मीरपुर, खानपुर, सैयदपुर, नूरपुर आदि गाँवों में अधिक संख्या में मुसलमान रहते हैं और वहाँ जो हिन्दू अथवा सिख लोगों की हालत होती है उसका मार्मिक अंकन उपन्यास के दूसरे भाग में हुआ है। ढोल-चलाही नामक गाँव में सरदार हरनाम सिंह और बन्तो धार्मिक प्रवृत्ति के सिख-दम्पति अपनी चाय की दुकान चलाते हैं। यही एक मात्र गैर मुस्लिम परिवार है जो अपने मुस्लिम हितैषियों के भरोसे पर गाँव में दंगे के दौरान भी रहने की हिम्मत करता है। दोनों पति-पत्नी धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं। उनके अनुसार —''झगड़े - फिसाद तो होते ही रहते हैं, पर काम-धंधा तो बंद नहीं किया जा सकता।''[1] उन्हें इन्सानियत पर भरोसा है और सबसे बड़ा भरोसा अपने खुदा का है। —'' जिसके सिर के उपरि तू सुआमी सो दुःख कैसा पावे।''[2]

खुदा के भरोसे और कुछ बची हुई इन्सानियत के कारण ही सिख दम्पति बच कर शहर पहुँच जाते हैं लेकिन उनका बेटा इकबाल सिंह मुसलमानों के आक्रोश का निशाना बनने से नहीं बच पाता। उसे जान बचाने के लिए इस्लाम कुबूल करना पड़ता है।

''शाम ढलते-ढलते इकबाल सिंह के शरीर पर से सिखों की सब अलामतें दूर कर दी गई थीं और मुसलमानों की सभी अलामतें उतर आई थीं।

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 179

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 179

पुरानी अलामतें हटाकर नई अलामतें लाने की देर थी कि इन्सान बदल गया था, अब वह दुश्मन नहीं था दोस्त था, काफ़िर नहीं था मुसलमान था। मुसलमानों के सभी दरवाजे उसके लिए खुल गए थे।

खाट पर पड़ा इक़बाल रात भर छटपटाता रहा।"[1]

धर्म या मज़हब की मूल बातों का अनुकरण लोग शायद ही करते हों किन्तु अपने 'धर्म की रक्षा' के लिए मर मिटने तथा मार डालने की हिंसात्मक भावना तुरंत ही इन लोगों में जागृत हो जाती है। भाईचारे, बंधुत्व एवं सद्भाव की भावना एकाएक लुप्त होने लगती है एवं एक-दूसरे के प्रति घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या और दुर्भाव की भावना उग्र रूप धारण कर लेती है। इस धर्म के कारण हो रहे युद्ध में लड़ने वालों के पांव बीसवीं सदी में होते हैं और सिर मध्ययुग में। सैयदपुर के गुरुद्वारे में मुस्लिम-सिख फसाद इसी तरह का ही एक हिंसक युद्ध था। यह घमासान युद्ध दो दिन और दो रात तक चलता रहा। असला समाप्त होने पर जब लड़ना नामुमकिन हो गया तब कहीं जा कर यह युद्ध रुका। इस युद्ध के वर्णन में ऐतिहासिक युद्धों की याद ताजा होने लगती है।

"'तुर्कों' के ज़ेहन में भी यही था वे अपने पुराने दुश्मन सिखों पर हमला बोल रहे हैं और सिखों के ज़ेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहालिया करता था। यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की शृंखला में एक कड़ी ही थी।"[2]

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 230

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 231

इस लड़ाई के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में निर्दोष सिख और मुस्लिम मारे जाते हैं। सिख स्त्रियां और बच्चे कुएं में कूद कर आत्म बलिदान करते हैं। शत्रु वर्ग के हाथ में पड़ने से उचित सिख - स्त्रियाँ कुएं में कूद कर मरना बेहतर समझती हैं और वहीं जाना उन्हें उचित जान पड़ता है जहाँ उनके सिखवीर गए हैं।

भावात्मक स्तर पर धर्म से जुड़े ये लोग अपने परंपरागत रीति-रिवाज़ और रूढ़िग्रस्त विचारधारा को प्रश्रय देते हैं। इन सब के समक्ष अपनी जीवन की कोई कीमत उनकी दृष्टि में नहीं है। धर्म के प्रति अन्ध श्रद्धा सदियों से भारत-वासियों में रही है और न जाने अब भी कितनी सदियों तक रहेगी। आज के वैज्ञानिक युग में भी धर्म के प्रति श्रद्धा और धार्मिक क्रिया - कलापों के प्रति लोगों का रुझान कम नहीं हुआ। धर्म के प्रति आज के शिक्षित मानव के मन में पहले जैसी श्रद्धा चाहे न भी हो किन्तु संस्कार से जनित मानसिक कुण्ठाएं व एक प्रकार का भय आज भी विद्यमान है।

साम्प्रदायिक दंगों के दौरान स्त्रियों पर हुए अत्याचारों का वर्णन अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। बलात् धर्मपरिवर्तन, हिन्दू स्त्रियों का मुसलमानों से बचने के लिए आत्महत्या करना और जो जान नहीं दे पाती वे मुसलमानों द्वारा बलात्कार का शिकार होती हैं।

''हम जब गली में घुसे तो कराड़ भागने लगा, कोई इधर जाए कोई उधर जाए। हिन्दुओं की लड़की अपने घर की छत पर चढ़ गई। हमने देख लिया जी। सीधे दस-बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गए। वह छत की मुंडेर लांघकर दूसरे घर की छत पर जा रही थी जब हमने

उसे पकड़ लिया। नबी, लालू, मीरा, मुर्तज़ा, बारी-बारी से सभी ने उसे दबोचा।''[1]

धर्म की रक्षा के लिए किये गए इस युद्ध में जब असला चुक जाता है तब सिख समझौता करने के लिए पैसा दे-दिला कर बचे हुए लोगों की जिन्दगी बचाना चाहते हैं किन्तु सौदा पटता नहीं। मज़हबी जुनून की यह अंधी आंधी बहुत से घर बरबाद कर बहुतों की जानें लेकर ही थमती है।

''जब रोशनी फैलने लगी तो चील और कौव्वे, ढेरों-के-ढेरों आसमान में उड़ने लगे। अनेक गिद्ध भी मंडराते हुए आ गए।...... कुछ गिद्ध कुएं की जगत पर भी आ बैठे थे जहाँ लाशें फूलने लगी थीं। घरों के मुंडेरों पर भी जगह-जगह गिद्ध आकर बैठ गए थे। गलियाँ सुनसान पड़ी थीं, बिखरी लाशें गाँव की निःस्तब्धता को और भी गहरा बना रही थीं।...... बलवाई, लूटपाट का सामान लेकर लौट गए थे। गुरुद्वारे से कुएं की ओर जाने वाले रास्ते पर जगह-जगह औरतों के परांदे, चुन्नियाँ-चूड़ियाँ गिरी पड़ी थीं।....... गलियों में टूटे खाली सन्दूक कनस्तर, खाटें, लूटपाट की कहानी कह रहे थे। मकानों के किवाड़ कहीं अधखुले, तो कहीं टूटे पड़े थे। जगह-जगह उस आँधी के निशान थे जो रात भर चलती रही थी।''[2]

इस तबाही और लूटपाट के बाद कहीं पांचवें दिन जाकर डिप्टी कमिश्नर की आँख खुलती है और जो कार्य उसे पहले दिन करना चाहिए वह

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 235

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 240

अब करता है। शहर में शांति स्थापित करने के लिए शहर और उसके आस-पास के इलाकों के ऊपर से हवाई-जहाज उड़वा कर। –" जिस-जिस गांव पर से हवाई-जहाज उड़ता गया, वहीं पर ढोल बजने बन्द हो गए, नारे लगाए जाने बन्द हो गए। आगज़नी और लूटपाट बन्द हो गई।"[1] तत्पश्चात् शहर में कर्फ्यू लगवा दिया जाता है और हथियार-बन्द फ़ौज भी गश्त लगाती है। दो रिफ्यूजी कैम्प खोले जाते हैं जिनमें 20 गांवों से आने वाले आहत शरणार्थी ठहराए जाते हैं। लूटपाट और मरने वालों के आंकड़े एकत्र किये जाते हैं किन्तु –"बाबू परेशान हो उठता है। वह आंकड़े मांगता था, लोग उसे अपने ज़ख्म दिखा रहे थे।"[2] अपने खोये हुए बीवी-बच्चों, लुटी हुई जिन्दगी के दर्दनाक हादसों और अनिश्चित भविष्य के सन्दर्भ में लोग प्रश्न करते हैं, उन अफसरों और समाजसेवकों से, जिनके पास उनके प्रश्नों का कोई उचित उत्तर नहीं है। कांग्रेसियों का विश्वास अहिंसा से उठ चुका है और उन्हें अब फिर से इस पर विश्वास दिलाने की शक्ति बख्शी साहब के पास भी नहीं रह गयी। प्रकाशो अब अपने मां-बाप के पास वापस नहीं आ सकती क्योंकि –"अब हमारे पास आकर क्या करेगी जी, बुरी वस्तु तो उसके मुंह में उन्होंने पहले से ही डाल दी होगी।"[3]

डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड अपने कर्त्तव्य के प्रति तब सजग हो उठता है जब एक सौ तीन गांव आगजनी के शिकार हो चुके होते हैं और शहर की अनाजमण्डी जल कर खाक हो जाती है। अपनी पत्नी को जब वह इसकी

1- तमस – भीष्म साहनी – पृ0 243

2- तमस – भीष्म साहनी – पृ0 257

3- तमस – भीष्म साहनी – पृ0 267

सूचना देता है तो लीज़ा व्यंग्य करती हुई पूछती है —''इतने गाँव तो जल गए रिचर्ड, अभी भी तुम्हें काम है ? अब तुम्हें और क्या काम करना है ?''

लीज़ा को आश्चर्य हो रहा था कि इतने लोग मर रहे थे तब उसका पति क्यों अपने कर्तव्य के प्रति सजग नहीं था । अब जब कि सब तबाह हो चुका है, वह लोगों के लिए सहायता कैम्प खुलवा रहा है । शहर में फौज तैनात करवा दी गई है । सभी वे कार्य जो पहले होने चाहिए, बाद में क्यों हो रहे हैं ? जहाँ औरतें डूब मरी वहाँ कुछ और न देखकर रिचर्ड क्यों लार्क पक्षी की बात करता है ? इतना सब होने पर क्यों उसे उजड़े हुए गाँवों में घूमने का शौक चढ़ आया है ? लीज़ा रिचर्ड को समझ नहीं पाती —'' तुम कैसे जीव हो रिचर्ड, ऐसे स्थानों पर भी तुम नन्हे-नन्हे पक्षी देख सकते हो, लार्क पक्षी की आवाज़ सुन सकते हो ?''

—'' इसमें कोई विशेष बात नहीं है, लीज़ा सिविल सर्विस हमें तटस्थ बना देती है । हम यदि हर घटना के प्रति भावुक होने लगें तो प्रशासन एक दिन भी नहीं चल पाएगा ।''

''यदि 103 गाँव जल जाएँ तो भी नहीं ?''

''तो भी नहीं,'' रिचर्ड ने तनिक रुक कर कहा —'' यह मेरा देश नहीं है । न ही, ये मेरे देश के लोग हैं ।''[1]

शासक वर्ग क्रूर और तटस्थ है । भारतवासियों में जब भी कभी राष्ट्रीयता की भावना पनपने लगती है तभी विदेशी प्रशासक वर्ग द्वारा उसे

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 255

दबाने का षड्यन्त्र रचा जाता है। अंग्रेज जानते थे कि भारत की कौन सी नस कमज़ोर है जिसको दबाने से मित्रता की प्रवृत्ति, भारतीयों में भयानक रूप धारण कर लेती है। यह कमजोर नस रही है साम्प्रदायिकता की भावना। हिन्दू-मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों का अपनी-अपनी धार्मिक अवधारणा के व गौरवमय इतिहास के प्रति मर मिटने की भावना। धर्म के कारण हिन्दू-मुस्लिम में सदियों से जो भिन्नता रही है वह आजादी के चालीस सालों के बाद भी बनी हुई है। जिसके कारण साम्प्रदायिक एकता एवं राष्ट्रीय बन्धुत्व की भावना का अभाव देखने को मिलता है। धर्म के प्रति दोनों वर्गों में अत्यन्त निष्ठा, श्रद्धा और अंधविश्वास है तथा इस जड़ता की भावना को तोड़ने में अभी शायद शताब्दियाँ लगें। इसी साम्प्रदायिकता के भड़कने का प्रशासक, जनता के अहित का अपना स्वार्थ साधता रहेगा।

"धर्म के नाम पर आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।" रिचर्ड ने मुसकराकर कहा।

"बहुत चालाक नहीं बनो रिचर्ड, मैं सब जानती हूँ। देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो। क्यों, ठीक है ना ?"[1]

शासक वर्ग अपने राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए इस अमानवीय षड्यन्त्रों का सहारा लेने से भी नहीं चूकता।

"ये लोग आपस में लड़े क्या यह अच्छी बात है ?"

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 123

"क्या यह अच्छी बात होगी कि ये लोग मिलकर मेरे खिलाफ लड़ें, मेरा खून करें ?" रिचर्ड ने कहा और करवट बदल कर एक हाथ से लीज़ा के बाल सहलाने लगा । --" कैसा रहे अगर ये आवाज़ें मेरे घर के बाहर उठ रही हों, और ये लोग मेरा खून बहाने के लिए संगीनें उठाये बाहर खड़े हों ?"

लीज़ा सिर से पाँव तक काँप उठी । वह रिचर्ड के और पास गई और अँधेरे में उसके चेहरे की ओर देखती रह गई । उसे लगा जैसे मानवीय मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं होता, वास्तव में महत्त्व केवल शासकीय मूल्यों का है ।"[1]

अंग्रेज शासक षड्यन्त्र के शिकार साधारण स्तर के लोग थे । उच्च वर्ग के लोग अपना बचाव करते आए हैं, किन्तु इस विभीषिका का शिकार बेकसूर जन-साधारण को बनना पड़ा ।

भीष्म साहनी ने 'तमस' में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली प्रशासकीय क्रूर कूटनीति के साथ इस ओर भी संकेत किया है कि परंपरागत रूढ़ियों, आडम्बर-युक्त रीति-रिवाज़ तथा धर्म के नाम पर मानव-समाज में जो कुकर्म होते हैं, वे सब दोनों सम्प्रदायों के लोगों में अन्तर बढ़ाने, उनमें एक-दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष जैसे दुर्भाव उत्पन्न करने में सहायक होते हैं । इसी से साम्प्रदायिकता की समस्या अपना व्यापक रूप धारण करती है । साम्प्रदायिकता की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें उखाड़ फेंकना सहज नहीं है । धर्म के नाम पर हो रहे अमानवीय कुकृत्यों को विभाजन के समय धर्म के ठेकेदार श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं । काफिर या म्लेच्छ को मारना बड़े सवाब

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 123

का काम माना जाता था । हिन्दू महासभा में जनसंघ की कवायत, असलों का जमाव, वानप्रस्थी जी का प्रवचन, मास्टर देवव्रत और उनकी शिक्षा, साथ ही युवा पीढ़ी की सृजनात्मक मानसिकता को कुंठित कर उन्हें हत्या, हिन्दू जातिवाद, हथियार चलाने की शिक्षा-दीक्षा देने केसाथ क्रूर व भयानक ढंग से अमानवीय कृत्यों के लिए प्रेरित करना इत्यादि को बढ़ावा दिया जाता है । इस वातावरण में साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने वाले का कोई महत्व नहीं रह जाता अपितु साम्प्रदायिकता भड़काने वाले अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं । अपनी सुरक्षा की अपेक्षा दूसरे को नष्ट करने की भावना अत्यन्त बलवती हो उठी । दोनों सम्प्रदायों के बीच एक दूरी आ खड़ी होती है । देश-विभाजन को इसी दूरी का परिणाम माना जा सकता है । किन्तु यह स्थिति तब अत्यन्त असहनीय एवं शोचनीय मालूम होती है जब विवेकशील व्यक्ति भी इसमें पूर्ण सहयोग देते हैं । सदियों से एकसाथ रहते आये हिन्दू-मुस्लिम में जो सांस्कृतिक धरातल पर अपनत्व के संबंध बन गये थे, वे टूटने लगे और धर्म के नाम पर हो रहा देश-विभाजन अत्यन्त दुःख का कारण बना । धार्मिक भिन्नता के कारण एक-दूसरे के प्रति कभी न खत्म होने वाली घृणा और विद्वेष की भावना बढ़ती ही जाती है और एक-दूसरे के लिये ये लोग 'काफिर' या 'म्लेच्छ' बनते ही जाते हैं । एक-दूसरे को जान से मार डालना अपना नैतिक एवं धार्मिक कर्तव्य मानते हैं । उपन्यासकार के उपन्यास का सबसे सबल पक्ष सम्प्रदायों की मनोवृत्ति और संघर्ष के लिए उनके उन्माद और उनकी तैयारी का सूक्ष्म और बहुरंगी चित्रण है ।"[1]

'तमस' में चित्रित विभीषिका का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी

1- आलोचना - भारत-भूषण अग्रवाल -'एक ऐतिहासिक विभीषिका का क्लोज़ अप'- पृ० 50

था कि मानव-जाति ने इतने विशाल पैमाने पर विभाजन की समस्याओं का सामना-सामना पहले कभी नहीं किया था । कल्पना के घोड़ों को चाहे कितना ही खुला क्यों न छोड़ दिया जाता, समस्या की विलक्षणता तक वे कभी नहीं पहुंच सकते थे । पिछले तीन हजार सालों से देश में सभी कुछ आपस में इतना घुल-मिल गया था कि उन सब को जुदा करके काटना व बांटना असंभव था लेकिन विभाजन के समय यह सब करना पड़ा, जिसका परिणाम हुआ- धर्म के नाम पर मानवीय मूल्यों का कत्लेआम । एक जमीन, एक आसमान के नीचे रहने वाले लोग अब अलग-अलग जमीन और आसमान की मांग कर रहे थे । अंग्रेज भारतीयों को भारत सौंप कर जा रहा था किन्तु पूरी तरह टूटा बिखरा व तबाह भारत । अंग्रेजों में भारतीयों के प्रति अपनत्व की भावना, तीन सौ साल तक राज्य करने पर भी नहीं आ पायी थी । रंगभेद की क्रूर अमानवीय नीति और प्रशासकीय कूटनीति के कारण अपनी बीमार एवं हिंसक मानसिकता का परिचय भारत-विभाजन से वह दे गया था । देश-विभाजन का सारा दोष भारतीयों पर मढ़ कर स्वयं तटस्थ होने का स्वांग कर, दूर खड़ा तमाशा देख रहा था ।

विभाजन-पूर्व भारत में अन्तरिम सरकार बना दी गई थी, जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग दो प्रमुख पार्टियों के राजनैतिक नेता सक्रिय रूप से अपनी भूमिका निभा रहे थे किन्तु उनमें देश-विभाजन की समस्या पर समझौता नहीं हो पा रहा था । हिन्दू-मुस्लिम में कत्लेआम बढ़ गया था और न्याय-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो चली थी । न्याय-व्यवस्था के नाम पर अंग्रेज कहते थे कि देश की बागडोर तो अब भारतीयों के हाथ है । देश की स्थिति संभाले नहीं संभल रही थी । हिन्दुओं के प्रदेश में मुसलमान मारे-काटे जा रहे थे और मुस्लिम क्षेत्र में हिन्दू । दोनों सम्प्रदाय यह मानकर चलने लगे कि हिन्दुओं के

में मुसलमान नहीं रह सकता और मुसलमानों के क्षेत्र में हिन्दू की कोई आवश्यकता नहीं है। अराजकता बढ़ने लगी और हिंसक घटनाएँ देश के कोने-कोने में विशेष रूप से पंजाब में मार्च 1947 से लेकर जनवरी 1948 तक चलीं। इसमें जो दंगे, आगजनी, बलात्कार, लूट और हत्याकाण्ड, लूटपाट हुआ वह अत्यन्त भयावह था। विभाजन की लोमहर्षक स्थिति का भारत-वासियों ने कभी भी सामना नहीं किया था। आपसी सद्भाव, विश्वास, बन्धुत्व जैसी भावनाओं का तो लोप हो गया था।

उपन्यासकार भीष्म साहनी का जन्म रावलपिण्डी में सन् 1915 में हुआ था और उनका बचपन वहीं बीता, इस कारण, बँटवारे के समय देश में हो रही हिंसात्मक घटनाओं का उन्होंने साक्षात्कार किया था। इस उपन्यास के परिवेश और वातावरण के सन्दर्भ में अपने संस्मरणों में उन्होंने बताया है कि ——''तमस का परिवेश मार्च 1947 में रावलपिण्डी तथा आस-पास के गाँवों में हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे हैं। ये दंगे लगभग पाँच-छः दिन तक रहे और जिला के सैकड़ों गाँवों को अपनी लपेट में लिया। दंगे तो पाँच-छः दिन तक रहे किन्तु वहाँ पहले से देश के वायुमण्डल में हिन्दू-मुस्लिम तनाव पाया जाता था। जब से पाकिस्तान की तहरीक चली थी, साम्प्रदायिक प्रचार को एक तरह खुली छुट्टी मिल गई थी।''[1]

सुअर मारकर फिंकवाने की छोटी-सी घटना से किस प्रकार साम्प्रदायिक आग भड़कती है, यह सोचकर आश्चर्य भी होता है। बुद्धिजीवी मानव, धर्म और सम्प्रदाय विशेष के लिए किस प्रकार विवेकहीन हो सकता है। आज के

1- आधुनिक हिन्दी उपन्यास – भीष्म साहनी –पृ0 427

भौतिक युग में यह सब क्यों संभव है ? शायद हिन्दुस्तानी धार्मिक संकीर्णता में इस प्रकार जकड़े हुए हैं कि धर्म के नाम पर कुछ भी कर पाना उनके लिए असंभव नहीं । पंजाब में हो रहे सिक्ख कृत्य इसका ताजा उदाहरण है । इस बार देशी शासक अपना उल्लू सीधा कर रहा है ।

उपन्यास में किसी भी सम्प्रदाय के लोगों के लिए अहम सवाल यह नहीं कि सुअर किसने फेंका ? अपितु सुअर फेंकने से पहले ही यह निश्चित है कि यह घिनौना काम काफ़िर ही कर सकते हैं । हिन्दू-मुस्लिम आपस में एक-दूसरे के प्रति संशय और अविश्वास की ऐसी दृष्टि ले कर चलते हैं, जो उनके बीच की दूरी को कभी भी कम नहीं होने देते । साम्प्रदायिकता का परिणाम हजारों की संख्या में बेगुनाह और निर्दोष, निरीह लोगों का हताहत होना है ।

साम्प्रदायिकता का तमस जब बढ़ने लगता है तब और भी भयानक अनहोनी घटनाएं घटित होने लगती हैं । सिक्ख-दम्पत्ति की तरह घर-परिवार छोड़ असहाय लोग भटकते हैं, इकबाल सिंह जैसे लोगों का बलात् धर्म-परिवर्तन होता है, स्त्रियों के साथ बलात्कार जैसे कुकृत्य अथवा नुरा जैसे लोग प्रकाशो जैसी स्त्रियों को जबरदस्ती उठा कर ले जाते हैं । किन्तु इस भयानक व क्रूर वातावरण में भी कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके मन में इन्सानियत की भावना बनी रहती है —''राज़ो ऐसी ही एक पात्र है । राज़ो सिक्ख-दम्पत्ति को अपने घर में एक रात के लिए शरण देती है । राज़ो के पति तथा पुत्र दोनों लीगी हैं और जब जानते हैं कि उनके घर में काफ़िर को पनाह दी गई है तो वे उन्हें मारने को तैयार होते हैं, किन्तु कोई ऐसी शक्ति उन्हें ऐसा करने से रोकती है ।'' —''काफ़िर को मारना और बात है, अपने घर के अन्दर जान-पहचान के पनाह-गज़ीन को मारना दूसरी बात । उनका खून

करना पहाड़ की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था । मजहबी जुनून और नफरत के इस माहौल में एक पतली-सी लकीर कहीं पर अभी भी खिंची थी, जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था ।''[1]

मानवता में विश्वास रखने वाले देवदत्त, मीरदाद, सोहन सिंह और बख्शी जैसे पात्र हिंसात्मक घटनाओं को रोकने व साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने का प्रयास करते हैं । ये लोगों को समझाते हैं कि आपसी झगड़े छोड़कर एक हो जाएं । —''अगर हिन्दू-मुसलमान-सिख मिल जाते हैं, उनमें इत्तहाद हो जाता है, तो अंग्रेज की हालत कमजोर पड़ जाती है । अगर हम आपस में लड़ते हैं तो उसकी हालत मजबूत बनी रहती है ।''[2] किन्तु इन लोगों को यह समझाना अपना अर्थ खो चुका था, जिन पर साम्प्रदायिकता का जुनून सवार था । हिन्दू-मुस्लिम में एक-दूसरे के प्रति शत्रुता की भावना उग्र रूप धारण कर चुकी थी । गोपाल सिंह मुख्तार का प्रसंग तनाव को बढ़ाने में और भी कारगर सिद्ध हुआ । सैयदपुर के गुरुद्वारे पर हुआ सिख धर्मयुद्ध इसका परिणाम था । खून से खून का बदला लेने का जो जुनून लोगों के सिर पर सवार हुआ । वहाँ विवेक से चालित लोगों की स्थिति भी दयनीय थी । मीरदाद की भी यही स्थिति थी ।—'' न घर न घाट, न आगा न पीछा, अमन करवाने आया है । ओ, तू है कौन ? जिन्हें माँ नहीं पूछती हमारे पास चले आते हैं । मुफ्त-खोर कहीं के ।''

गली के सिरे पर मीरदाद ने मुड़कर फिर कुछ कहने की कोशिश की, पर कसाई बिफरा हुआ था, कड़क कर बोला —''जा, जा निकल यहाँ से मरदूद कहीं का । एक झापड़ दूँगा मुँह पर, दाँत बाहर आ जाएँगे ।

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 220

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 199

जो अपने बाप के लायक है ।''[1]

भीष्म साहनी ने 'तमस' में यह बताने की चेष्टा की है कि अंग्रेज ने ही यह साम्प्रदायिकता की भावना उत्पन्न की थी, ऐसी बात नहीं, यह साम्प्रदायिकता की भावना तो सदियों से हिन्दू-मुस्लिम में रही है और समय-समय पर जब भी भड़क कर सामने आयी है तो अत्यन्त भयावह हो उठी है । अंग्रेजों ने भी इस सुप्त विभीषिका को जागृत कर लाभ कमाने की कोशिश की और सफल रहे । किन्तु यह घृणा, विद्वेष, साम्प्रदायिक उन्माद और इन सबसे उत्पन्न विचार और व्यवहार-जन्य क्रूरता इस देश में कितनी ही शताब्दियों पहले पनपी और समय-समय पर अपना रूप बदल-बदल कर नंगा नाच नाचती रही है । विदेशी जातियाँ एक के बाद एक आती रहीं और लूट-खसोट तथा व्यापक नर-संहार द्वारा इस भयावह अग्नि को हवा देती रहीं । देश का सामान्य-जन बाहर विदेशी आक्रांताओं द्वारा रौंदा जाता रहा और अंदर जात-पाँत, ऊँच-नीच की क्रूर असमानता में पिसता रहा ।''[2] 'तमस' का कथानक अपनी पृष्ठभूमि में इस ऐतिहासिक तथ्य को लेकर चलता है । ''विराट् सिद्धान्त संयुक्त भारत में विकसित पूँजीवादी स्वार्थों और हितों की देन था, जिसमें साम्राज्यवादी शासकों ने सहयोग दिया था । विराट् सिद्धान्त जितना अमानवीय और अव्यावहारिक था यह 'तमस' पढ़कर अच्छी तरह से सिद्ध होता है । भारत-विभाजन से किसी को कुछ नहीं मिला, हाँ वे लोग अवश्य लाभ में रहे जिनका यह सुनियोजित षड्यन्त्र था ।''[3]

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 202

2- आधुनिक हिन्दी उपन्यास - तमस : भीष्म साहनी - महीप सिंह, पृ० 286

3- हिन्दी उपन्यास - सामाजिक चेतना - कुँवर पाल सिंह - पृ० 208

उपन्यास के बुद्धिजीवी पात्र बख्शी जी अच्छी तरह जानते हैं कि —"फ़साद करवाने वाला भी अंग्रेज, फ़साद रोकने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज, घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज . . . . . जब से फ़साद शुरू हुए हैं बख्शी जी के दिमाग में धूल सी उड़ने लगी थी, बस केवल इतना भर ही बार-बार कहते रहे कि अंग्रेज फिर बाज़ी मार ले गया ।"[1]

वानप्रस्थी जी और गोल्डा शरीफ के पीर जैसे मानवता के शत्रु धर्म के नाम पर लोगों के मस्तिष्क में साम्प्रदायिकता का विष घोलने में सफल होते हैं । धर्म के संकीर्ण दायरे से ऊपर उठ कर लोग सोच सकें ऐसा मौका धर्म के ये ठेकेदार उन्हें नहीं देते । अपने स्वार्थों के हित के लिए मानवता का हनन करने वाले ये, घिनौने चेहरे धर्म के नकाब ओढ़ कर अपना उल्लूसीधा करते हैं ।

मुराद अली जैसे देश द्रोहियों का जब असली चेहरा सामने आता है तब-तक नत्थू जैसे निरीह लोग, जो उसके घृणित स्वरूप को पहचानते हैं, दंगों का शिकार हो चुके होते हैं । मुराद अली, शाहनवाज़ और लाला लक्ष्मी नारायण जैसे लोगों की जान और माल दोनों सही-सलामत रहता है । ये लोग गरीब, जाहिल नहीं थे, समझदार, मालदार और इज्ज़तदार खानदानी लोग थे । मन में चाहे वैमनस्य रहे किन्तु ये व्यवहार कुशल और एक-दूसरे की ज़रूरतें समझने वाले लोग हैं । हिन्दू मुस्लिम भेद इनमें भी था, लेकिन इन लोगों में व्यापारिक संबंध अधिक अटूट था । शाहनवाज़, सेठ लक्ष्मी नारायण, ठेकेदार शेख नूर इलाही, हकीम ब्यातबख्श, रघुवीर जैसे धनी-मानी

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 250

व्यापारी एक-दूसरे की पूरी मदद करते है । रघुवीर और सेठ लक्ष्मी नारायण सपरिवार शाहनवाज़ के द्वारा सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाये जाते है । यहाँ पर शाहनवाज़ में उन्हें पुण्यात्मा के दर्शन होते है लेकिन शाहनवाज़ के मन में जो घृणा और हिन्दुओं के प्रति विद्वेष है, वह मिल्खी पर कहर बनकर टूटता है । लेकिन स्वयं शाहनवाज़ ऐसा कृत्य करने का कारण ढूँढने में अपने को असमर्थ पाता है । शाहनवाज़ का दोहरा व्यक्तित्व इस बात का द्योतक है कि साम्प्रदायिकता से वह पूर्णतः प्रभावित है किन्तु जहाँ उसके स्नेह संबंध है, मित्रता है और विशेषतः जहाँ व्यावसायिक स्तर पर उसके संबंध है उनमें वह अपना विद्वेष प्रकट नहीं कर पाता । कह सकते है कि वह एक व्यवसाय-कुशल मुसलमान व्यापारी है ।

डा० महीप सिंह के अनुसार—"शाहनवाज़ महान व्यक्ति और समूह चरित्र की विसंगति और द्वन्द्व का सबसे बड़ा उदाहरण है । व्यक्ति के रूप में अपने विधर्मी मित्र के लिए वह कुछ भी कर सकता है, पर समूह रूप में वह एक मुसलमान है और उसके चरित्र का यही पहलू उसे गरीब मिल्खी की हत्या करने पर बाध्य कर देता है ।"[1]

लाला लक्ष्मी नारायण नगर का एक धनी व्यापारी है । हिन्दू जाति के नाम पर दान देने में सबसे आगे रहता है । वह हिन्दुत्व के प्रति पूर्ण निष्ठावान है । मुसलमानों के साथ व्यापार करने के साथ ही अच्छी दोस्ती भी रखता है लेकिन हिन्दुओं के कत्ले-आम पर वह भी बौखलाया हुआ है ।—

1- आधुनिक हिन्दी उपन्यास — पृ० 300

''लड़कों को लाठी चलाना सिखाओ, इस काम में एक दिन की भी देरी नहीं करो। मैं इस काम के लिए पाँच सौ रुपये दूँगा।''[1] धनी-मानी व्यक्ति होने के कारण उन पर हाथ उठाने की हिम्मत किसी में नहीं थी, लेकिन सुरक्षित होते हुए भी उन्हें विश्वास किसी पर भी नहीं था।

''बेहतर रहो बाबूजी, आपके घर की तरफ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता। पहले हम पर कोई हाथ उठाएगा, फिर आप पर उठने देंगे।''[2]

फतहदीन की बात पर लाला जी को विश्वास था भी और नहीं भी। ख्यातुल्ला मुस्लिम लीगी, का आश्वासन कि उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता, पर भी लाला जी को बिगड़े हुए हालात में मुसलमानों पर विश्वास रख पाना कठिन प्रतीत होता है। लाला एक अन्य मुसलमान शाहनवाज़ की मदद से मुस्लिम इलाके से हिन्दुओं के मुहल्ले में सपरिवार पहुँचने में देर नहीं करते। दंगे खत्म होने पर हिन्दू-मुस्लिम एकता में ज़ोर-शोर से अपने मुस्लिम मित्रों के साथ अमन कमेटी के सदस्य बनाये जाते हैं। रणवीर उनका चचेरा पुत्र है जो हिन्दू-महासभा से प्रभावित होकर एक मुस्लिम का कत्ल करने में सहयोग देता है, उसी के पाँव में आई चोट का इलाज़ मुस्लिम हकीम ख्यातुल्ला द्वारा लालाजी करवाते हैं। ख्यातुल्ला के कहने पर कि —''मैंने सुना है किसी दलबल में भी हिस्सा लेता है। मेरी मानो उसे कुछ दिन के लिए कहीं बाहर भेज दो। यहाँ पकड़-धकड़ का डर है।

लाला लक्ष्मीनारायण के कान खड़े हो गए, पर उन्होंने घबराहट ज़ाहिर नहीं होने दी —

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 67

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 127

''पन्द्रह साल का तो लड़का है, वह क्या हिस्सा लेगा। पर उन्हें मन-ही-मन तजवीज पसन्द आई। रणवीर को कुछ दिन के लिए बाहर भेज देना यही ठीक रहेगा।''[1]

वस्तुतः लाला लक्ष्मी नारायण जैसे अमीर लोगों का कोई बाल भी बांका नहीं कर पाता क्योंकि ''जाहिल लोग लड़ते हैं, समझदार खानदानी लोग नहीं लड़ते। वो सब तो मौके का फायदा उठाते हैं। दूसरों को लड़वाते भर हैं। शहर में हो रहे साम्प्रदायिक दंगों से ये लोग भी काफी परेशान रहते हैं और अपनी तरफ से प्रयास करते हैं कि शहर में अमन कायम हो किन्तु साथ ही धन देकर अपने-अपने धार्मिक संगठनों को आर्थिक दृढ़ता भी देने से पीछे नहीं हटते। इस वर्ग के 'जान और माल' दोनों ही सुरक्षित रहते हैं। माल गोदाम का बीमा करवाये हुए हैं और जान एक-दूसरे की मदद से बचा लेते हैं। साम्प्रदायिक दंगों में इन लोगों का नुकसान नहीं होता, नुकसान होता है साधारण और निम्नजाति के लोगों का। इत्र बेचने वाला मुसलमान, लकड़ी की टाल में काम करने वाला कश्मीरी, मिलखी, सिख मजदूर अधेड़ उम्र का हिन्दू जरनैल, नत्थू, सैयदपुर गांव में रहने वाला सिख समुदाय स्त्री-पुरुष, बच्चे ये सब बेकसूर, निरीह धर्म के नाम पर हो रहे इस भयानक युद्ध का शिकार बनते हैं। झगड़े-फसाद के बाद जब देवदत्त मरे हुए व्यक्तियों के आंकड़े एकत्र करता है तो पाता है कि ये सब साधारण लोग हिन्दू-मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के लगभग एक-ही संख्या में हताहत हुए हैं।

—''आज तहसील नूरपुर के कुछ आंकड़े मिले हैं। मरने वालों की संख्या में बहुत अन्तर नहीं। जितने हिन्दू-सिख, लगभग उतने ही मुसलमान।''

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 277

भीष्म साहनी ने तत्कालीन स्थिति में स्त्रियों के साथ हुए अत्याचारों का कुछ प्रसंगों में मार्मिक चित्रण किया है। बलात्कार, बलात्, धर्म परिवर्तन और ब्रूर हत्याकाण्ड जैसे कृत्यों का स्त्रियां सबसे अधिक शिकार हुईं। सिख स्त्रियों का सामूहिक रूप से कुएं में कूद कर जान देना, उनके मन में बसी संस्कारगत धार्मिक जड़ता को तो यह प्रसंग स्पष्ट करता ही है तथा इसके साथ ही उनमें जीवन से भी बढ़ कर अपनी अस्मत की रक्षा व विधर्मी के हाथ में पड़ने से बेहतर मृत्यु का वरण जैसी प्रबल धारणाओं का भी संकेत देता है। किन्तु जिन स्त्रियों में जीवन के प्रति आसक्ति थी उनकी दशा और भी बदतर होती है —''वक्त-वक्त की बात है। एक बागड़ी औरत को हमने गली में पकड़ा। हम कोठों के घर के अन्दर से निकल रहे थे। ऐसा हाथ चल रहा था, जो सामने आता, एक बार में गर्दन साफ हो जाती। यह औरत सामने आई तो चिल्लाने लगी। हरामज़ादी कहे जा रहे थी, मुझे मारो नहीं, मुझे तुम सातों अपने पास रख लो, एक-एक करके जो चाहो कर लो। मुझे मारो नहीं।''

—''फिर ?''

—''फिर क्या ? अजीज़ ने सीधा खंजर उसकी छाती में मारा, वहीं खत्म हो गई।''[1]

स्त्रियां चाहे जिस युग की क्यों न रही हों युद्ध और बलवे फसाद में उनकी दुर्दशा कुछ अधिक ही होती है। शत्रु-पक्ष द्वारा उसका पूर्ण दलन होता है। उन्हें यातनाएं दी जाती हैं, बलात्कार का शिकार होती हैं, नहीं

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 235

तो कुएँ में कूद कर अथवा अन्य किसी ढंग से मृत्यु का वरण करती है। मुस्लिम-स्त्रियों का जिक्र उपन्यास में कम ही हुआ है। राजो और उसकी बहू का जिक्र हरनाम सिंह दम्पत्ति के प्रसंग में हुआ है। मुस्लिम स्त्रियों ही नहीं लेखक ने मुस्लिम पक्ष का उल्लेख उतनी बारीकी से नहीं किया, जितना कि हिन्दू पक्ष का। इसका कारण है, लेखक की अपनी कुछ सीमाएँ हैं, जिनके बीच वह बँधा रहता है।-

डा० महीप सिंह के अनुसार - "वे अपना कैमरा लेकर कहीं भी निकल जाते हैं और उसके चित्र धड़ाधड़ पाठक के सम्मुख पेश करने लगते हैं। पर सर्वगामी और सर्वदृष्टा लेखक की अनेक सीमाएँ भी हैं। शायद इसलिए भीष्म साहनी अपना कैमरा लेकर अधिकांशतः हिंदुओं के बीच ही घूमे हैं। पुण्यात्मा वानप्रस्थी जी, मास्टर देवव्रत और रणवीर क्या सोचते हैं, क्या करते हैं इसका तो उन्हें पता है, पर व्यातव्रण के वातावरण में क्या घटित हो रहा है, इसके जानने का दावा वे नहीं करते। स्वाभाविक है कि इस वातावरण से उनकी उतनी गहरी पहचान नहीं थी।..... लेखक ने मुसलमानों के पास में कैमरा बहुत थोड़ी देर के लिए दिया। इस दृष्टि से वह अतिरिक्त रूप से सतर्क और सजग है और अपनी सीमा जानता है।"[1]

"भीष्म जी ने मुस्लिम पक्ष को अपनी सीमा और संकोच के बावजूद जितना चित्रित किया है, खूब किया है।"[2]

शहर में हो रहे दंगों से परेशान और इन राजनैतिक मूल्यों की रक्षा हेतु दमन चक्र को चलते हुए देखने वाली एक अन्य विदेशी स्त्री डिप्टी कमिश्नर

1- डा० महीप सिंह - आधुनिक हिन्दी उपन्यास - नरेन्द्र मोहन - पृ० 296

2- वही - पृ० 297

की पत्नी, लीजा है। वह भी इस साम्प्रदायिक विभीषिका से परेशान है, लेकिन उससे अधिक वह अपने एकाकीपन एवं बोरियत से परेशान है। लीजा को यह सब दंगे-फसाद पसन्द नहीं, वह इसे मानवता का ह्रास मानती है किन्तु अपने पति की भांति वह भी एक सीमा के बाद इन झगड़ों से तटस्थ रहती है। भीष्म साहनी ने इस अंग्रेज दम्पत्ति का बहुत यथार्थपरक वर्णन किया है। "लीजा बड़ी भावुक और मानवीय दृष्टि से सम्पन्न है। रिचर्ड गम्भीर, तटस्थ, धूर्त और निर्ममता के साथ आज्ञाओं का पालन करने वाला व्यक्ति है।"[1] "वह स्थिति को उसी तटस्थ ठण्डेपन से देखता है जैसे तक्षशिला के खंडहरों और मूर्तियों को।"[2] दोनों सम्प्रदायों के बीच न पड़ कर उनसे किनारा कर तमाशा देखने वाला रिचर्ड जानता है कि अगर ये दोनों एक हो गये तो उसकी दशा बिगड़ेगी। अंग्रेज दम्पत्ति शासक वर्ग का होने के कारण उस प्रकार की भावनाएं लेकर नहीं चलता जिस प्रकार की हिन्दू-मुस्लिम एक-दूसरे के प्रति रखते हैं। दोनों सम्प्रदाय आपसी वैमनस्य से त्रस्त भी रहते हैं और उससे उभरना भी चाहते हैं, लेकिन धार्मिक कट्टरता और अन्ध-विश्वास के कारण उभर नहीं पाते। अंग्रेज प्रशासक चाहता तो यह सब हिंसक कृत्य आरम्भ होने से पहले ही रोक सकता था, किन्तु जब उसका उद्देश्य ही हिन्दू-मुस्लिम एकता के खिलाफ कार्य करना था तो इस साम्प्रदायिक विभीषिका का भड़क उठना कोई बड़ी बात नहीं थी।

'तमस' में तत्कालीन राजनैतिक संगठनों का वर्णन किम्प पूर्णतः तटस्थ रूप से किया गया है। उन्होंने किसी भी राजनैतिक उद्देश्य से यह

1- हिन्दी उपन्यास- विविध आयाम - डा0 चन्द्रभानु सोनवणे -पृ0 35।

2- अठारह उपन्यास - तमस-रचनात्मक दबावों की खोज - राजेन्द्र यादव-पृ0 161-162

उपन्यास नहीं लिखा । ''राजनीतिक घटनाओं, दावपेंचों और बौधिक ऊहापोह से भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में अपने को पूर्णतः बचाया है । इन राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली भावात्मक स्थितियों तक ही अपने परिदृश्य को सीमित रखा है ।''[1] राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं अपितु हर दृष्टि से उपन्यासकार अपने को अलग रख कर इस उपन्यास के कथानक को लेकर चला है । डा0 महीप सिंह के मतानुसार इसका कारण —''समय के अंतराल ने लेखक की तात्कालिक उत्तेजना और भावुकता को कुछ हद तक सोख लिया है और वह तटस्थता प्रदान कर दी है जो किसी भी कलाकृति के लिए आवश्यक है ।''[2] भारत विभाजन के समय हो रही घटनाओं का तीखापन उपन्यास में उन घटनाओं के तीन-दशक गुजर जाने पर भी बरकरार है और '' 'तमस' न केवल बीते हुए के प्रति ज्यादा सही और तटस्थ दृष्टि से लिखी गयी रचना है बल्कि उस समय की उथल-पुथल को ज्यादा गतिशील ढंग से प्रस्तुत करती है ।''[3]

''किसी ऐतिहासिक घटना को उपन्यास का आधार बनाते समय जरूरत होती है कि रचनाकार उस घटना-चक्र के केन्द्र व अन्तर्विरोधों को पूरी ईमानदारी और जागरूकता के साथ उभार सके । साथ ही उन अन्तर्विरोधों के टकराव में यातनाग्रस्त मानवता के प्रति अपनी और अपने पाठकों की सहानुभूति को उद्वेलित करते हुए किसी तार्किक परिणति (Logical conclusion) तक पहुँच सके ।''[4]

1- धर्मयुग — 22 दिसम्बर, 1974

2- आधुनिक हिन्दी उपन्यास - तमस : भीष्म साहनी — डा0 महीप सिंह -पृ0285

3- आलोचना — उपन्यास और समय-संदर्भ — राजेन्द्र यादव - पृ0 51

4- भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना — राजकुमार सैनी - पृ0 137

आधुनिक युग में यथार्थवादी रचनाकार यथार्थ के चित्रण में अपने निजी स्वार्थों तथा संकीर्ण राजनैतिक मान्यताओं का परित्याग करके एक तटस्थ दृष्टि लेकर जब तक नहीं चलता तब तक उसकी रचना एक संपूर्ण कलाकृति का रूप धारण नहीं कर पाती । आधुनिक उपन्यासकार एक तटस्थ व्यक्ति के रूप में यथार्थ की प्रमाणिक अभिव्यक्ति को ही सृजनात्मक क्रिया की चरम उपलब्धि स्वीकारने लगा है ।[1] मोहभंग से उत्पन्न मनः स्थिति और संकीर्ण राजनीति के घेरे को तोड़कर जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों से संचित यथार्थ को प्रस्तुत करने में आधुनिक उपन्यासकार प्रयत्नरत रहा है ।"भीष्म जी ने अपनी कलम की तटस्थ सादगी से उस खौफनाक दिल दहला देने वाले कुछ हादसों को पेश किया है , जो विभाजन-साहित्य में बेजोड़ है ।"[2] भीष्म साहनी की यह तटस्थता ही कृति की उत्कृष्टता का महत्वपूर्ण कारण भी है ।

'तमस' का कथानक चूंकि एक ऐतिहासिक घटना से संबंधित है इस कारण तत्कालीन राजनैतिक वातावरण का, राजनैतिक गतिविधियों एवं तत्कालीन सक्रिय राजनैतिक संगठनों का वर्णन उपन्यास में हुआ है । भारत में 19वीं शताब्दी तक कुछ राजनैतिक संगठनों ने अपने आपको स्थापित कर लिया था । इनमें सबसे सशक्त पार्टी अथवा संगठन कांग्रेस का था । कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में की गई थी । आरंभ में इस पार्टी में हिन्दू-मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के लोगों ने पूर्ण उत्साह से भाग लिया । गांधी जी के आगमन से इस पार्टी की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई थी लेकिन धीरे-धीरे इसमें हिन्दुओं की संख्या अधिक होने लगी और फलस्वरूप मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों में इस पार्टी के प्रति

1-

2- कृष्णा सोबती -- पृ०x8xx भीष्म साहनी - व्यक्ति और रूप -- पृ० 64
भीष्म साहनी आधी रोशनी, आधे अंधेरे से अलग और आगे ।

अलगाव बढ़ने लगा और 30 दिसम्बर 1906 में नवाब बकार-उल-मुल्क की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग की स्थापना हो गई। मुस्लिम लीग की स्थापना में जहाँ मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों के निजी स्वार्थ और संकीर्णता की भावना थी, वहीं इस कार्य में उन्हें अंग्रेज प्रशासक का सहयोग भी मिलने लगा था। हिन्दुओं को अंग्रेज उनकी सहिष्णुता के प्रति प्रोत्साहित करता रहा था और अब मुसलमानों को भी एक अलग राजनैतिक संगठन स्थापित करने में तथा दोनों सम्प्रदायों में एक निश्चित दूरी बनाये रखने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित करता रहा। कट्टरपंथी हिन्दू भी कांग्रेस से पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं थे, इस कारण उन्होंने भी ऐसे संगठन खड़े किए जो उनके व्यक्तिगत धार्मिक स्वार्थों को परिपूर्ण करने में सहायक थे। 'हिन्दू महासभा' और 'जनसंघ' जैसे संगठन बनाये गये। मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया में इन संगठनों की स्थापना हुई। 'आर्यसमाज' और 'सिंह समाज' जैसे धार्मिक संगठन भी पूर्णतः सक्रिय हो उठे थे। कांग्रेस की तरह ही राष्ट्रीय एवं राजनैतिक विचारधारा को लेकर चलने वाली एक अन्य राजनैतिक पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना सन् 1926 ई० में हुई।

19वीं शताब्दी में देश में नवजागरण और राष्ट्रीय एवं राजनैतिक चेतना को जागृत करने का जो प्रयास आरंभ हुआ उसमें अनेक संगठनों ने अपना पूर्ण योगदान दिया। किन्तु जब ब्रिटिश प्रशासन ने भारत में स्वतंत्रता के लिए उफनते ज्वार को देखा और उन्हें अपने शासन की जड़ें हिलती नज़र आईं तो देश को स्वाधीन करने के अलावा उन्हें कोई उपाय न सूझा। उन्होंने देश को स्वतंत्र करने की घोषणा की लेकिन साथ ही देश-विभाजन की विकट समस्या को भारतीयों के समक्ष रख कर। वे उपनिवेशवादी साम्प्रदायिकता की चिनगारियों को सुलगा कर स्वयं किनारा कर गये। देश-विभाजन के प्रश्न

पर सभी राजनैतिक नेता उलझ कर रह गए और साम्प्रदायिकता की चिनगारियाँ दहकती हुई भयानक आग बन जन-साधारण का भक्षण करने लगी। साम्प्रदायिकता की यह आग देश के कोने-कोने में फैलने लगी। इस विभीषिका को रोकने का हर प्रयास विफल होता गया। पाकिस्तान की माँग के आगे मुस्लिम-लीग कांग्रेस से किसी भी शर्त पर समझौता करने को तैयार नहीं थी। सन् 1940 से एक अलग राष्ट्र पाकिस्तान की जो माँग आरंभ हुई तो सन् 1946 तक अपना एक सुदृढ़ स्वरूप मुसलमानों के मानस-पटल पर उसने बना लिया था। पाकिस्तान को पाने के लिए सभी प्रकार के प्रयास इस सम्प्रदाय द्वारा होने लगे। साम्प्रदायिक दंगे-फसाद बढ़ने लगे इन्हें रोकने के लिए एक प्रस्ताव कांग्रेस पार्टी ने मुस्लिम लीग के समक्ष रखा कि बहुसंख्यकों के आधार पर पंजाब और बंगाल विभाजित करके दो प्रान्तों का निर्माण किया जा सकता है, लेकिन मुस्लिम-लीग ने यह योजना स्वीकार नहीं की और अन्ततः 2 जून 1947 को कांग्रेस ने हो रहे नर-संहार और अमानवीय कृत्यों को रोकने के लिए एक नये राष्ट्र पाकिस्तान के निर्माण को मान्यता दे दी। लेकिन विभाजन के समय भी हजारों की संख्या में निर्दोष लोगों का कत्ले-आम हुआ। कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता जहाँ एक ओर साम्प्रदायिकता की इस आग को बुझाने का प्रयास करते वहाँ दूसरी ओर धार्मिक सम्प्रदाय इसको भड़काने में कोई कसर बाकी नहीं रहने देते। कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों वैचारिक धरातल पर भिन्न रही है, लेकिन निःसन्देह विभाजन के समय हो रही ऐसी घटनाओं को रोकने का उन्होंने बहुत प्रयास किया। लोगों में वैमनस्य की भावना को दूर करके आपसी सद्भाव के वातावरण को बनाने का प्रयास 'तमस' में कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता करते हैं। बख्शी जी, जनरैल, हकीम अब्दुल गनी, शंकर इत्यादि कांग्रेस के नुमाइंदे, विभाजन की समस्या से पूर्व जो उद्देश्यलेकर चले थे, जन-मानस में राष्ट्र के प्रति जागरण की चेतना को उभारने का वही कार्य कम्युनिस्ट

पार्टी के देवदत्त, मीरदाद, शोहन सिंह इत्यादि भी कर रहे थे, लेकिन साम्प्रदायिकता से उत्पन्न विकट स्थिति से बचने के प्रयास में इनका सारा ध्यान और शक्ति लग गई किन्तु इन्हें सफलता न मिल सकी ।

उपन्यास के पहले भाग के दूसरे अध्याय में शहर की सफाई करने का काम कांग्रेस के कार्यकर्ताओं द्वारा हो रहा था । वह उस समय कांग्रेस द्वारा देशभर में समाजसेवा द्वारा लोगों में राष्ट्र के प्रति जागरूकता एवं स्वतन्त्रता के लिए उत्साह का गठन करने का एक प्रशंसनीय प्रयास था और नवजागरण का यह प्रयास सफलता भी प्राप्त कर रहा था, किन्तु साथ ही कट्टरपन्थी हिन्दू और मुस्लिम इस पार्टी को अपनी जमात का नहीं मानते थे । मुसलमानों के अनुसार कांग्रेस में हिन्दू अधिक हैं इसलिए इसे "हिन्दुओं की जमात" कहा जाता है और बढ़ रहे हिंसक दंगों से आवेश में आये हुए हिन्दू कहने लगे कि —"यह सारा काम कांग्रेसियों ने बिगाड़ा है । इन्होंने ही मुसलमानों को सिर पर चढ़ा रखा है ।"[1] "तर्क और विवेक की बातें इस माहौल में बेअसर थीं । कांग्रेस वालों के समझाने पर कि कांग्रेस में तो हिंदू, मुसलमान, सिख सभी हैं, मुस्लिम लीग वाले कहते हैं कि कांग्रेस में जो मुसलमान हैं वे हिन्दुओं के कुत्ते हैं और उन्हें हिन्दुओं से नफरत नहीं, उनके कुत्तों से नफरत है ।...... कांग्रेसियों के समझाने पर कि आजादी सबके लिए है सारे हिन्दुस्तान के लिए है, वे कहते हैं — हिन्दुस्तान की आजादी हिन्दुओं के लिए होगी, आजाद पाकिस्तान में ही मुसलमान आजाद होंगे ।"[2] साम्प्रदायिकता के परिवेश से और हु मानवीय मूल्यों के प्रति उत्पन्न अविश्वास से धीरे-धीरे

---

1. तमस - भीष्म साहनी - पृ० 68

2. साम्प्रदायिकता के अनेक घिनौने चेहरे — रमेश उपाध्याय - पृ0 434-435

कांग्रेस कार्यकर्त्ता पार्टी का साथ देने से कतराने लगते है । जरनैल जैसा सनकी लेकिन सच्चा कांग्रेसी बिगड़े हुए हालात की परवाह किये बिना लोगों में अमन कायम करने की अपील करता है । गांधी जी का वह सच्चा समर्थक है और पाकिस्तान बनेगा ऐसा वह सोचता भी नहीं । "अमन और एकता के लिए अन्तिम सांस तक जरनैल संघर्ष करता रहा । वह गांधी जी का सच्चा सिपाही था । ईमानदार कांग्रेसी । और इन सबके पीछे एक भावुक मनुष्य । हिंसा और बदले की भावना से भी खून हुए और अमन कायम करने में प्रयत्नशील लोगों के भी खून हुए । परन्तु इन दोनों मृत्युओं में कितना बड़ा अन्तर है । जरनैल उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो किसी श्रेष्ठ मूल्य के लिए जीते थे और उसी की पूर्ति के लिए मृत्यु के अधीन हो जाते थे । उसका खून वास्तव में शांति, अहिंसा, मैत्री और भाईचारे का ही खून है ।"[1]

बख्शी जी कांग्रेस पार्टी के प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में चित्रित हुए है, लेकिन साम्प्रदायिकता के इस तमस में वह भी डूबते-उतराते रहते हैं, यहां तक कि दंगे समाप्त हो जाते जिन लोगों का कांग्रेस से विश्वास उठ चुका है उनके प्रश्नों का सन्तोषप्रद उत्तर भी उनके पास नहीं होता । लेकिन जो हो रहा है और जो हो चुका है, उससे हार कर पीछे नहीं हटते, हर प्रकार के कार्य में आगे बढ़कर जान की परवाह किये बिना कुछ भी करने से नहीं हिचकिचाते । पार्टी और देश के लिए वह सदैव तत्पर है, लेकिन ऐसी घटनाओं से उनके भी मानवता के मूल्यों और आदर्शों के टूटने का यथार्थ अवलोकन हो जाता है ।

समाज में फैली साम्प्रदायिकता एक बोझ के समान है, जो अपने वास्तविक रूप में जब भी उभरता है तब 'तमस' जैसी कई रचनाओं की सृष्टि

1- हिन्दी उपन्यास - विविध आयाम - डा० चन्द्र भानु सोनवणे -
तमस - साम्प्रदायिकता के अंधेरे में भटकता आम आदमी -सूर्य नारायण
रणसुभे - पृ० 354-355

का विषय बनता है । मानव जीवन के इस घिनौने और विकृत रूप को चित्रांकित करती है । मानवीय मूल्यों और आदर्शों की औषधि इस रोग को समाप्त करने में असफल हो जाती है तो यह रोग और भी भयानक रूप धारण कर मृत्यु का ताण्डव करता है । भीष्म साहनी ने तमस में मुख्य रूप से मानवीय समाज में साम्प्रदायिकता के इस रोग की सांकेतिक शैली में प्रस्तुती की है । मानव द्वारा उत्पन्न इस साम्प्रदायिकता के कारण मानव समाज बुरी तरह से प्रताड़ित होता है । इसके पीछे चाहे वर्गीय संकीर्णता रही हो चाहे प्रशासकीय शक्तियाँ किन्तु मानवता का जो हनन होता है वह अत्यन्त भयावह और क्रूर है ।

—

चौथा अध्याय

'क्रान्ती' –'मजदूरवर्गीय नारी का उभरता नया चेहरा'

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में, नारी के विविध रूपों का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक धरातल पर विश्लेषण किया गया है। नारी-शिक्षा और प्रगतिशील विचारों के आगमन से नारी-समाज ने निःसंदिग्ध उल्लेखनीय प्रगति की है। घर की चार-दीवारी में कैद स्त्री अब पुरुषों की भांति प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आधुनिक साहित्य में नारी को मात्र विलासिता और कल्पना-लोक की अप्सरा के रूप में प्रस्तुत कर देने से ही उसके वास्तविक रूप का आकलन संभव नहीं हो पाता, अपितु जीवन के कटु यथार्थ को भोगती एवं जीवन की कठिन समस्याओं से जूझती नारी का यथार्थ रूप भी आज के साहित्य में प्रस्तुत किया जाता है।

साहित्य की अन्य विधाओं के साथ कथा-साहित्य में नारी को केन्द्र में रखकर अनेक रचनाओं का निर्माण हुआ। डा० विमला शर्मा के मतानुसार – ''नारी के व्यक्तित्व विकास में हिन्दी उपन्यासों का सर्वाधिक योगदान रहा है।''[1] प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में नारी को आदर्श एवं यथार्थपरक दोनों धरातलों पर प्रस्तुत किया गया। नारी का आदर्श रूप एवं नारी के वास्तविक जीवन से संघर्षरत स्थिति का यथार्थपरक चित्रांकन किया जाने लगा। नारी को सृजन के केन्द्र में रख कर साहित्य-यात्रा सतत् गतिवान रही।

हिन्दी साहित्य में नारी की भूमिका के विषय में डा० विमला शर्मा का कथन है कि –''इसमें संदेह नहीं कि आरंभ में नारी केवल काव्य-

---

1- साठोत्तर हिन्दी उपन्यास में नारी के विविध-रूप – पृ० 11

सृजन के उस के रूप में कार्य करती रही है किन्तु कालांतर में साहित्य की अन्य विधाओं में भी उसके विभिन्न रूपों का चित्रण होने लगा । गद्य की विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक शैलियों के कारण नारी की भावुक, रोमांटिक और संश्लिष्टात्मक धरातल से उठाकर तर्कसम्मत बनाने का प्रयास किया गया । अद्यतन युग में यही प्रयास साहित्य की समग्र विधाओं में दृष्टिगत होता है ।"[1]

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में आधुनिक शिक्षित एवं अभावग्रस्त अशिक्षित नारी, दोनों की समस्याओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाने लगा । अपने अधिकारों एवं प्रगति के लिए जागृत नारी पुरुष प्रधान समाज में अपने शारीरिक एवं मानसिक शोषण के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करती रही है । आधुनिक साहित्य में नारी जीवन की जटिलता को प्रस्तुत करने में यथार्थवादी लेखक सफल हो रहे हैं । प्रगतिशील विचारों को लेकर चलने वाले उपन्यासकार भीष्म साहनी ने 'कड़ियाँ' एवं 'बसन्ती' दोनों उपन्यासों में नारी-समाज की समस्याओं और जीवन के बदलते मूल्यों के बीच विडम्बनाओं से घिरी नारी की विषम स्थितियों का अंकन किया है ।

'बसन्ती' भीष्म साहनी का एक सशक्त उपन्यास है । इसमें भी भीष्म जी ने निम्नवर्ग एवं उसी से संबंधित एक युवती के जीवन की जटिल समस्याओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है । बसन्ती के जीवन में उतार-चढ़ाव का क्रमबद्ध ब्यौरों के साथ ही उसकी बस्ती और बिरादरी के लोगों की जीवन समस्याओं का भी लेखक ने यथार्थ अंकन प्रस्तुत किया है ।

1- साठोत्तर हिन्दी उपन्यास में नारी के विविध रूप - पृ० 12

उपन्यास में मजदूरों की एक अनाधिकृत बस्ती दिल्ली शहर के रमेश नगर क्षेत्र में बसी है । अनधिकृत होने के कारण ये बस्तियाँ बार-बार बनती और बिखरती रहती है ।

''बस्ती क्या थी, दिल्ली की ही एक सड़क के किनारे छोटा-सा राजस्थान बना हुआ था । आजादी के बाद दिल्ली शहर फैलने लगा था । नयी-नयी बस्तियों की उसारी होने लगी थी, उन बस्तियों के बनाने के लिए जगह-जगह से राज - मजदूर ही नहीं, धोबी, नाई, चाय-पान वाले और भी तरह-तरह के धन्धे करने वाले लोग दिल्ली पहुँचने लगे ।''[1]

बस्ती में रहने वाले नाई चौधरी की चौदह बरस की युवकन्या में प्रवेश करती कन्या बसन्ती के जीवन की विडम्बनाओं का वर्णन उपन्यास में हुआ है । उजड़ती बस्ती को चकित-उत्सुक नेत्रों से देखती यह हँसमुख, चंचल व चपल किशोरी जीवन के हर क्षण को जीना चाहती है ।

''श्यामा बसन्ती की ओर देख-देख कर हैरान हो रही थी कि इस लड़की के अन्दर भगवान ने हँसी के कैसे सोते डाल रखे है । बात-बात पर उसकी हँसी फूटने लगती है । भगवान ने शरीर तो इसे लड़की का दिया है, पर आत्मा जैसे पक्षी की, तभी यह सारा वक्त फुदकती, चहकती फिरती है । एक मिनट के लिए भी चैन से नहीं बैठ सकती ।''[2]

जीवन के प्रत्येक स्थिति में पूर्ण आस्था एवं आशा के साथ जीने की तत्पर बसन्ती की चरित्रगत विशिष्टता का उपन्यास के आरंभ में ही लेखक ने संकेत किया है ।

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 13

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 34

''लेकिन माँ-बाप को उसकी चिन्ता नहीं थी, जितनी कि अपने सामान और बेटे की। इसी कारण वे सब तो लारी में लदकर चले गये, उसे वहीं छोड़कर—बसन्ती का मन फिर न जाने कैसा हो रहा था। माँ, बाप और रामू को दूर जाते देख उसके गले में काँटे से चुभने लगे थे। रामू को ले गये हैं और मुझे पीछे छोड़ गये हैं। पर यह विचार मन में आते ही बसन्ती ने स्वभावानुसार सिर झटक दिया — लारी पर चढ़ना क्या मुश्किल है। पहले पहिये पर चढ़ जाओ, फिर कुन्डे पर पाँव रखो और फिर तख्ता पकड़कर अन्दर कूद जाओ। उह! जैसे मैं अपने आप नहीं चढ़ सकती।''[1]

बसन्ती आत्मनिर्भर होने के बावजूद अपने मात-पिता की दृष्टि में एक बोझ है। उनके स्नेह एवं सद्भाव के लिए उसे सदा तरसना पड़ता है। प्रताड़ना एवं कुटील व्यवहार के कारण अक्सर निम्नवर्गीय युवतियाँ कुण्ठा एवं हीन भावना का शिकार हो जाती हैं, किन्तु बसंती दिल्ली जैसे शहर में रहते हुए जीवन की वास्तविकताओं को भली प्रकार समझती है। ''गाँव में रहती तो शायद वह इस ताड़ना के असर से दब्बू बन जाती, लेकिन दिल्ली में यह ताड़ना उसकी स्वच्छन्दता को और तीव्र बनाती है।''[2] मात-पिता की उपेक्षा का शिकार बसंती- अपने चंचल एवं अल्लहड़ स्वभाव के द्वारा मनोविकारों एवं हीन-भावना ग्रस्त होने से बची रह पाती है।

''थोड़ी देर बाद बसंती एक टहनी से दूसरी टहनी पर उतरी,

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 29-30

2- आलोचना — जिजीविषा और व्यवस्था का टकराव — योगेन्द्र ठाकुर - पृ० 63
(अप्रैल-जून-83)

पर फिर जमीन पर उतरने की बजाय उछलकर बालकोनी पर चढ़ गयी और पलक मारते बालकोनी की इकहरी दीवार के ऊपर खड़ी हो गयी और दोनों बाँहें दायें - बायें फैलाये दीवार पर चलने लगी, वैसे ही जैसे नट तनी हुई रस्सी पर चलने लगते है ।''[1]

जीवन की विडम्बनाओं व समस्याओं से जूझती तथा प्रबल जिजीविषा लिये यह युवती एक अनूठा चरित्र है । बसंती अपने जीवन की विकट-से-विकट समस्या को सिर झटक कर —''तौबा बीबीजी'' कह कर, झेल जाती है । वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष-रत रहती है किन्तु जीवन की विषम परिस्थितियों से समझौता करके भी चलना पड़ा और अधिकांशतः उसे कटु-यथार्थ की पीड़ा को सहना पड़ा । पिता के दायित्वहीन, प्रेमी दीनू का स्वार्थी एवं असहिष्णु व्यवहार व जीविका कमाने के लिए जूझती बसंती अपने अनुभवों से ही जीवन के यथार्थ रूप को देखती व समझती है ।

मानवीय संवेदना को तरसती तथा जीवन की विडम्बनाओं से घिरी बसंती निर्भय हो कर जीना चाहती है और उसके लिए प्रयास भी करती है । जब श्यामा बीबी उसे कहती है —'' भगवान जी से डरकर रहना चाहिए।'' तो जवाब में बसंती कहती है —''किस-किस से डर कर रहूँ, बीबी जी ? बापू से ? माँ से ? आपसे ? भगवान से ?''[2]

अपने तथा अपने वर्ग के लिए भगवान के रूप को भी वह पहचानती है । —'' भगवान जी बुरा कब हुए है ?'' बसन्ती ने कहा ....''[3]

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 35

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 34

3- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 34

बसन्ती फिल्मी दुनिया में कोई किसी नायक के स्वप्न देखती, गीत गाती - गुनगुनाती, अलमस्त जीवन जीना चाहती है, किन्तु उसका पिता उसे कठोर यथार्थ की दुनिया में खींच लाता है।— ''हरामजादी, अभी तक सो रही है। उठ जा.....और चौधरी ने उसे चुटिया से पकड़कर खाट पर सीधा बैठा दिया।...[1] चौधरी बसन्ती का विवाह साठ साल के वृद्ध दर्जी बुलाकीराम से तय करके तथा बेटी का सौदा करके पेशगी रुपये भी ले चुका था। बसंती एक वृद्ध की पत्नी बनना नहीं चाहती। वह जिस समाज में रहती है वहाँ स्त्री की दशा अत्यन्त दयनीय है। स्त्री एक बोझ है। बिक्री का सामान है। घर में तिरस्कृत और माता-पिता की आँखों की किरकरी है। बुलाकी राम जैसे वृद्ध से विवाह प्रस्ताव का विरोध वह चूहे मारने की गोलियाँ खाकर करती है, किन्तु न तो वह मर पाती है और न ही उसकी समस्या का समाधान हो पाता है। वह अपने समाज एवं माता-पिता के प्रति विद्रोह करना चाहती है और तभी उसके जीवन में एक जवान, सजीला युवक दीनू आ जाता है। बुलाकी राम से बचने के लिए एवं अपने समाज के प्रति आक्रोश प्रकट करती हुई यह युवती दीनू के साथ भाग निकलती है।

आधुनिक युग में भी —''भारतीय समाज में नारी-वर्ग की स्थिति सम्मानपूर्ण बन्दी से अधिक नहीं रही। नारी के निरन्तर शोषण के लिए धर्म, नैतिकता और सामाजिक मूल्यों में भी समय-समय पर परिवर्तन किये जाते रहे हैं।''[2] पुरुष-प्रधान समाज में नारी का निरन्तर शोषण होता रहा है। पुरुषों के अत्याचार, बहु-विवाह, अनमेल विवाह, परित्यक्त नारी

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 18

2- हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना - डा० कुँवर पाल सिंह पृ० 38

का वेश्या बनना , दहेजप्रथा इत्यादि के रूप में नारी को सहने पड़े और आज भी पिछड़े एवं निम्नवर्ग की स्त्रियों का मोल-भाव व अनमेल विवाह, जैसी असंगत परंपराओं का निर्वाह होता है । बसंती का वृद्ध बुलाकी राम से विवाह का समर्थन उनके वर्ग के पिछड़ेपन का द्योतक है ।

''जब सभा विसर्जित हुई तो बुलाकी राम पहले से भी ज्यादा ढोल मारता हुआ मैदान पार कर रहा था । उसके चले जाने के बाद देर तक हँसी-मजाक चलता रहा । . . . . . . बीड़ी के कश खींचते हुए बस्ती के लोग, मुँह में लड्डुओं की मिठास के चटखारे लेते हुए चौधरी और बुलाकी राम पर टिप्पणियाँ कसते रहे, पर किसी एक ने भी मज़ाक तक में इस तरफ टिप्पणी नहीं की कि चौदह बरस की छोकरी के साथ साठ बरस का बुलाकी क्यों ब्याह करने जा रहा है ? यहाँ तक कि जोध राज ने भी कुछ नहीं कहा ।''[1]

अपने समाज के स्त्रियों के वास्ते बने अंध-कानूनों के प्रति विद्रोह करने वाली व आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बसन्ती अपने भविष्य की योजनाएं स्वयं बनाती है । दीनू के साथ भाग कर वह उस होस्टल में दीनू के साथ रहती है, जहाँ वह नौकरी करता है । वहीं दोनों फिल्मी अन्दाज़ से शादी भी रचाते हैं ।

''चाँद की चाँदनी में बरामदे में खड़े दीनू का चेहरा उसे बड़ा गोरा - चिट्टा और सुन्दर लगा । उसकी आस्तीन पकड़ कर और उसके पास सटकर बसन्ती धीरे-धीरे बोली - 'अब हाथ पकड़ा है तो छोड़ना मत ।' उसने कुछ-कुछ फिल्मी अन्दाज़ में कहा ।''[2]

1- बसन्ती -- भीष्म साहनी - पृ0 72

2- बसन्ती -- भीष्म साहनी - पृ0 63

किन्तु शीघ्र ही बसन्ती का यह फिल्मी स्वप्न भंग होता है। जब उसे ज्ञात होता है कि दीनू पहले से ही विवाहित है। बसन्ती को वह अपनी वासना-पूर्ति के लिए अपने साथ लाया था। -"बसन्ती की आँखें फैल गयीं। यहाँ आने का मतलब बसन्ती की नज़र में वह नहीं था जो दीनू की नज़र में था। बसन्ती यहाँ दुल्हन बन कर आयी थी, अपने पति के घर आयी थी। वह अपने को गृह वधू समझ रही थी। पर दीनू की आवाज की स्वार्थ थी और क्रूर कामोत्तेजना।"[1]

× × ×

"बसन्ती हाथ बढ़ाकर उसकी पीठ सहलाने लगी -"तू अपने को मेरा घरवाला नहीं समझता ?" बसन्ती ने दुलार से पूछा।

दीनू ने बिना करवट बदले, लेटे-लेटे ही कहा -"मेरा ब्याह कब का हो चुका है।"

दीनू की पीठ पर रखा बसन्ती का हाथ काँप गया और वह उसी क्षण उठ कर बैठ गयी।"[2]

समाज से विद्रोह करने वाली, अपनी परंपरागत रूढ़ियों का बहिष्कार करने वाली यह युवती अपने प्रेम के समक्ष हार जाती है। वह प्रेम में धोखा खाती है। प्रेम उसे जीवन-भर रुलाता है। बसन्ती का सीधा-सादा मन इस कड़वे और तीखे अनुभव से तिलमिला कर रह जाता है।

- "फिर अचानक ही कहीं से गहरी हूकसी उठी और बसन्ती का सारा शरीर झिंझोड़ गयी। -"हरामी ने बताया ही नहीं कि उसके घर में

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 73

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 78

बीवी है । और अनायास ही दो गर्म-गर्म आंसू बसन्ती के गालों पर लुढ़क गये ।''1

बसन्ती के भावुक हृदय की कोमल भावनाओं को काम-तृप्ति के लिए व्याकुल पुरुष दीनू क्या समझता । उसे तो अपनी इच्छा पूर्ति के लिए एक स्त्री का शरीर चाहिए था जो बसन्ती के रूप में उसे सहज ही उपलब्ध हो गया था । विवाह का स्वांग दीनू की दृष्टि में अर्थहीन था । काम-तृप्ति से आतुर पुरुष यह नहीं जानता कि -'' नारी-शरीर ही नारी की संज्ञा को सार्थक नहीं करता, उसके मन की कोमल अनुभूतियां भी उसकी परिचायक होती है । पुरुष उसकी मानसिक अनुरूपता तक पहुंचे बिना शारीरिक स्तर पर ही उसे भोग का साधन मात्र बना डालता है तो नारी हृदय अथाह वेदना से भर उठता है ।''2

दीनू के विश्वासघात से आहत बसन्ती की दशा का लेखक ने अत्यन्त स्वाभाविक चित्रांकन किया है । -'' बसन्ती देर तक दीनू की पीठ पीछे बैठी रही । जीवन के बड़े-बड़े सदमे एक क्षण में अपनी चोट कर जाते हैं, पर घटते समय कोई प्रभाव नहीं छोड़ते, न कसक, न दर्द, न छटपटाहट, सिर से निकल जाते हैं और इन्सान अन्यमनस्कसा बैठे का बैसा व्यवहार करता रहता है, मानो कुछ भी न हुआ हो । दर्द की टीस तो बाद में उठती है ।''3

इस घटना के पश्चात् बसन्ती के जीवन की विषमताएं और विडम्बनाएं नये-नये रूप धारण कर उसके समक्ष आने लगती है । दीनू उसे गर्भावस्था में

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 80

2- साठोत्तर हिन्दी उपन्यास में नारी के विविध रूप - डा0 विमला शर्मा-पृ0 101

3- बसन्ती -- भीष्म साहनी - पृ0 79

छोड़, बिना बताये गाँव चला जाता है। दीनू का दोस्त बारू उसे अपनी रखैल बनाकर रखना चाहता है। बसन्ती बारू और अपने पिता से बचने के लिए जगह-जगह भटकती और छिपती फिरती है। अन्ततः वह श्यामा बीबी की एक सहेली के यहाँ आश्रय पाती है। बसन्ती जीवन के वास्तविक रूप का साक्षात्कार कर लेती है। उसकी सारी चंचलता व चपलता गायब होती जाती है। श्यामा बीबी उसे देखकर हैरान थी —''बसन्ती मुस्करा रही थी — एक धीमी अन्तर्मुखी-सी मुस्कान जो जिन्दगी के थपेड़े खाने के बाद इन्सान के चेहरे पर अपने-आप आ जाती है।''[1]

बसन्ती घर से बाहर रहकर कुछ ही समय में पुरुष के विविध रूपों के साक्षात्कार कर लेती है। उसे स्त्री को हर कदम पर लूटने-खसोटने वाले पुरुष प्रधान समाज के वास्तविक रूप की पहचान हो गई थी। बेटियों को बेचने वाला बाप चौधरी, प्रेम के नाम पर स्त्री को वासना-पूर्ति का साधन बनाने वाला प्रेमी दीनू, बसन्ती के शरीर का भूखा बारू और बहन का लम्पट पति, इत्यादि के रूप में वह पुरुष वर्ग के घृणित रूप को देखती है।

''सभी बीवियों के घर वाले उल्लू के पट्ठे होते हैं, बीबी जी, और बसन्ती हँस दी।''[2]

बसन्ती अपने तमाम दुःख-तकलीफों को हँस कर टाल देना चाहती है। उसकी लापरवाही व अल्हड़पन ही उसे इन विषमताओं के बीच कुछ राहत प्रदान करते हैं। जीवन के प्रति आस्था और विश्वास बनाये रखने वाली बसंती टूटना नहीं चाहती।—''' विश्वास की पतली सी डोरी टूटने में नहीं आती थी। उसी पर बसन्ती की ज़िन्दगी झूल रही थी।''[3]

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 82

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 91

3- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 93

बसन्ती का दीनू के प्रति विश्वास देखकर श्यामा बीबी हैरान होती है —'' क्या सचमुच उसे इस बात का यकीन है कि दीनू ने उसे नहीं बेचा है ? इतना कुछ देखने-समझने के बाद भी यह अनजान बनी हुई है। क्या यह कोई फिल्मी स्वांग तो नहीं रच रही थी, जैसे पहले स्वांग करती थी, एक तरह का मन-भुलावा कि वह इस कहानी की विरहिणी नायिका है जो तरह-तरह की मुसीबतें झेल रही है, इस विश्वास के साथ-साथ कि उसका वीर नायक एक दिन जरूर लौटेगा।''[1]

बसन्ती दीनू के प्रति अपने हृदय में जो स्नेह-सिक्त भावुकता रखती है, वह दीनू के कठोर व्यवहार के कारण भी समाप्त नहीं हो पाती। दीनू गाँव से एक दिन जरूर लौटेगा यही सोच कर वह उसका इन्तजार करती है, जबकि गाँव जाने से पूर्व दीनू उसे बता कर भी नहीं जाता।

दीनू के जाने से पूर्व ही उसका बाप उसे धर लाकर कैद कर देता है। बसन्ती की कैद की अवधि तभी समाप्त होती है जब उसका ब्याह बुलाकी राम से कर दिया जाता है। बसन्ती की स्थिति कुछ इस प्रकार की थी कि वह भाग नहीं सकती थी। विकट परिस्थितियों एवं विडम्बनाओं के समक्ष उसे नतमस्तक होना पड़ता है और बुलाकी राम के घर उसकी पत्नी बनकर आना पड़ता है। बुलाकी राम के रूप में बसन्ती नये पुरुष रूप का साक्षात्कार करती है।

—''बसन्ती को इस तरह के अटपटे व्यवहार की आशा नहीं थी। वह समझ बैठी थी कि एक बार बुलाकी के साथ बाँध दिये जाने पर, वह आदमी वैसे ही व्यवहार करेगा जैसा उनकी जात बिरादरी के सभी मर्द करते हैं, उस पर हुक्म चलायेगा, अपना अधिकार दिखायेगा। पर यह तो उसके

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 93

तलवे सहला रहा है ।''[1]

बुलाकी राम की लिजलिजी हरकतें, बात करते समय गड़-गड़ की ध्वनि निकालना, किसी-किसी वक्त मुँह से लार टपकने लगना, बसन्ती के पाँव सहलाने वाला यह विपद् किस्म का व्यक्ति जिसे देखकर बसन्ती खीझ और गुस्से से भर उठती है । किन्तु उसे अपने जीवन की लम्बी दौड़ के बाद कुछ आराम बुलाकी के घर ही मिल रहा था । यह आराम उसके आहत मन को बहुत राहत देता है । बुलाकी के विचित्र व्यवहार से बसन्ती परेशान तो नहीं होती अपितु चकित अवश्य होती है ।

''देख बसन्ती रानी तेरे बच्चे के कपड़े हैं, जग्गा, कच्ची, टोपी मैंने पहले से बना रखे हैं ''.....। बच्चे के कपड़े बुलाकी के हाथ में देखकर बसन्ती की आँखें फैल गयीं । वह कभी बुलाकी के चेहरे की ओर देखती, कभी बच्चे के कपड़ों की ओर ।''[2]

बुलाकी राम का व्यवहार देखकर बसन्ती अपने भविष्य के लिए आश्वस्त भी होती है ।

''बसन्ती को अच्छा लगा । उसे लगा जैसे उसके बच्चे को कोई ठिकाना मिल गया है, ...''[3]

साठ वर्ष की आयु में बुलाकी राम अपना घर बसा पाया था । घर को बनाये रखने के लिये उसे बसन्ती के तलुवे सहलाने में भी कोई ऐतराज नहीं था । वह भली-भाँति जानता था कि होने वाला बच्चा उसका नहीं और वह इस

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 104
2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 108
3- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 109

बात से भी अवगत था कि वह बाप बनने के काबिल नहीं है।

"पांच सौ किस बात के ? बारह सौ पर बात हुई थी। नौ सौ ले चुका है, बाकी तीन सौ मेरी तरफ निकलते हैं।"

"तीन सौ पिछले और दो सौ पेट के बच्चे के। तुम्हें बसी बसायी गिरस्ती मिल रही है। इसके लिए क्या दो सौ ज्यादा हैं ?"

जवाब में चौधरी ने दो टूक कह दिया था, "हमसे क्या छिपा है बुलाकी राम, तीन-तीन ब्याह रचा चुके हो, बच्चा एक नहीं हुआ। सभी लुगाइयाँ भाग गयीं। हमने तो सिर्फ दो सौ मांगे हैं। और कोई होता तो पांच सौ - हजार मांगता। घर में बच्चा खेलेगा तो जात-बिरादरी में सभी का मुंह बन्द हो जायेगा। और बुलाकी लाजवाब होकर बगलें झांकने लगा था और चौधरी पांच सौ रुपये खींचने में सफल हो गया था।"[1]

इस प्रकार चौधरी एक सफल व्यापारी की तरह अपनी गर्भवती बेटी का सौदा निपटा देता है। साठ-साल के बुड्ढे के साथ चौदह साल की लड़की का विवाह हो जाता है। भीष्म साहनी ने नारी के लिए बने समाज के क्रूर नियमों का उल्लेख उपन्यास में किया है। एक पिता का भावात्मक संबंधों को त्यागकर अपनी पुत्री को इस प्रकार बेचने पर समाज द्वारा भी कोई नैतिक बंधन अथवा नियम उसे ऐसा करने के लिए नहीं रोकता। इस प्रकार अनमेल विवाह सामाजिक रूढ़िग्रस्त रीति-रिवाजों की दशा पर तीखा व्यंग्य है। ये रीति-रिवाज आधुनिक परिवेश में खोखले और अर्थहीन साबित होते जा रहे हैं। यही कारण है कि इनका उल्लंघन किया जाता है, इसके

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 108

प्रति किसी प्रकार का आग्रह अब नहीं रह गया । बसन्ती को जब दीनू दुबारा मिलता है तो बसन्ती को समाज का कोई भी बन्धन दीनू के साथ जाने से नहीं रोक सकता और बुलाकी उसे आवाजें देता रह जाता है ।

बसन्ती किसी प्रकार के सामाजिक रूढ़ नियमों के अधीन रहना नहीं चाहती । बुलाकी को वह अपना पति नहीं मानती, दीनू को अपना पति व पुत्र का पिता मानती है । इस कारण बुलाकी से किये गए विवाह की उसकी नजर में कोई कीमत नहीं थी । समाज के द्वारा बनाये गये कठोर बन्धनों को तोड़ने के लिए जीवन पर्यन्त जूझती रहती है, किन्तु जीवन की विडम्बनाएँ उसके इस संघर्ष को अधिक जटिल बनाती जाती है ।

दीनू गाँव से लौट कर आया था, इससे बसन्ती के विश्वास की रक्षा हुई थी, वह खुश थी, किन्तु दीनू के साथ उसकी पत्नी रम्मी को देखकर बसन्ती की उमंगें बिखरने लगी थी । इन परिस्थितियों में जब कि बसन्ती बुलाकी राम का घर छोड़कर दीनू के साथ, अपने बच्चे को लेकर आ गई थी और परिस्थितियों से समझौता करके ही उसे अपना जीवन जीना था । वह रम्मी और दीनू के साथ रहने लगी थी । दीनू से उसके भावात्मक संबंध, उसकी विद्रोही प्रवृत्ति को कमज़ोर बनाते हैं । दीनू के समक्ष वह अपने आपको अशक्त अनुभव करती थी ।

''बसन्ती ठिठकी खड़ी थी । उसे सिर से कैसा ही भास होने लगा था जैसे दीनू के समीप आने पर पहले हुआ करता था, जैसे वह डूब रही है, जैसे अपने पर उसका कोई वश ही नहीं रह गया है, ऊपर को उठती, कोई लहर उसके सिर तक पहुँच रही है और वह उसमें डूबती जा रही है । दीनू पर आँख पड़ते ही उसका अंग-अंग शिथिल पड़ने लगा था ।''[1]

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 125

बीनू का साथ मिलते ही बसन्ती अपने फिल्मी स्वप्न लोक में खोने लगती है। —''उसे लगा था कि जैसे भविष्य ने फिर से अपनी बाहें उसके सामने फैला दी है और उसका स्वागत कर रहा है। अब फिर से मंसूबे बनाये जा सकते है, भावी जीवन की योजनाएं बनायी जा सकती है।''[1]

जीवन के प्रति आशावादी दृष्टि लेकर चलने वाली यह युवती विकट परिस्थितियों को झेलती हुई कभी भी निराशा की प्रवृत्ति को अपने ऊपर हावी नहीं होने देती।

बसन्ती अपने तमाम गुणों-अवगुणों के साथ एक सामान्य नारी है। अधिकांशतः कोठियों में काम करने वाली नौकरानियों की भांति मेहनत करके दो रोटी कमाने वाली इस उपन्यास की नायिका है। आधुनिक लेखक आम जन-जीवन से जुड़ा है और उसी को उभार कर अपनी कृतियों में प्रस्तुत करता है। समाज का विस्तृत अंकन उपन्यास जैसी विधा में ही संभव है। मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को आज के उपन्यास प्रस्तुत कर रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार —'' वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो एक रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही है, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके बीज विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।''[2]

भीष्म साहनी ने 'बसन्ती' में शहरी निम्नवर्ग के जन-जीवन, रीति-रिवाजों तथा अन्य प्रवृत्तियों का सूक्ष्म एवं स्वाभाविक दृष्टि से अंकन किया है।

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 126

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० 365

'बसन्ती' का चरित्र उपन्यास का मेरुदण्ड है किन्तु उसका व्यक्तित्व उसके वर्ग के संदर्भ में प्रस्तुत करने पर अधिक सार्थक एवं सशक्त रूप में उभरा है।

सामाजिक एवं नैतिक जंजीरों से बंधी बसन्ती इन्हें तोड़ने में संघर्ष-रत रहती है। विद्रोही व्यक्तित्व लिये इस युवती में नारीसुलभ भाव समय-समय पर उभर कर आते हैं। स्नेह, ममता, दया जैसे सौहार्दपूर्ण भावनाओं के साथ ही कभी-कभी घृणा, ईर्ष्या, विद्वेष जैसे दुर्भाव भी उसमें उभर कर आते हैं।

आरंभ में रुक्मी के साथ बसन्ती एक सखी की तरह व्यवहार करती है। किसी प्रकार की डाह और ईर्ष्या उसे नहीं सताती। यहाँ तक कि रुक्मी व दीनू के सहवास में भी उसे कोई आपत्ति नहीं होती। रुक्मी के बच्चा न होने के कारण बसंती उसके साथ पूर्ण सहानुभूति रखती है और उसका इलाज भी करवाती है।

''अरे, रोती क्यों है? क्या हुआ जो बच्चा नहीं हुआ तो, फिर उसका हाथ पकड़ कर बोली, ''नहीं री, रोता कौन है।''[1]

दीनू को नौकरी न मिलने के कारण घर-परिवार के पोषण का सारा दायित्व बसंती के कंधों पर आ जाता है। वह घरों में चौका-बर्तन करके, बड़ी मेहनत करके कमाती है। जीवन के संग्राम में वह हारना नहीं चाहती। वह निरन्तर संघर्षरत रहती है। अपनी वास्तविक स्थिति से वह अनभिज्ञ नहीं थी। दीनू की दृष्टि में वह मात्र नारी, उसके बच्चे की माँ थी और रुक्मी की तरह उसे पत्नी का पद प्राप्त नहीं था। वह दीनू की रखैल के रूप

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 134

थी । वह भली-भांति जानती थी कि रुक्मी के कब्जा होने पर दीनू के जीवन में उसका कोई स्थान नहीं रह जाएगा ।

''बसन्ती देर तक दरवाजे में खड़ी बिसूरती रही । यथार्थ के एक ही थापड़ ने कल्पनाओं, आकांक्षाओं और सपनों को चूर-चूर कर दिया हो, ऐसा तो नहीं था, लेकिन बसन्ती भौचक्की जरूर देखती रह गयी थी कि यह क्या हो गया । अजब यह था और बसन्ती के जीवन की विडम्बना भी इसी में थी -- कि न तो विषमताएँ बसन्ती का पीछा छोड़ती थीं और न बसन्ती का सपने देखने वाला स्वभाव ही बदल पाता था ।''[1]

दीनू के स्वार्थी व्यवहार और रुक्मी की ईर्ष्या का बसन्ती को आभास होने लगा था । वह अपने आप आर्थिक रूप से तो सशक्त किये हुए ही है साथ ही मानसिक रूप से भी किसी भी प्रकार का आघात सहने की शक्ति अपने भीतर एकत्र करने लगती है ।

--''कल तक बात-बात पर दीनू का मुँह जोहने वाली बसन्ती आज अपने आप ही घर-मालकिन की तरह व्यवहार करने लगी थी, जैसे उसने अपने को पहचान लिया हो, जैसे उसने यह भी समझ लिया हो कि घर टूट नहीं सकता, इसे बनाये रखने में ही कुशल है ।''

परिस्थितियों से समझौता करके जीने में ही भलाई है -- बसन्ती अपने अनुभवों से यह ज्ञान अर्जित करती है । किन्तु उसका विद्रोही मन दीनू के व्यवहार और शाम होते ही घर भर में व्याप्त वासना की घिनौनी बू में भड़क उठता है ।

1- बसन्ती - भीष्म साहनी -- पृ0 136-37

—''तू भी हरामी, वह भी हरामी । खबरदार जो मेरे बच्चे के हाथ लगाया । बड़ा आया बेचने वाला । मेरे पेट में बच्चा देखा मुझे बेचने चला था, हरामी, बेशर्म, बदजात ।''

"बसन्ती" को क्या हो गया था, उसे खुद मालूम नहीं था । सहसा ही वह भड़क उठी थी । उन वर्षों में भी जब वह अकेली भटकती फिरती थी और तरह-तरह की यातनाएँ सह रही थी, उसके मुँह से दीनू के प्रति एक भी बुरा शब्द नहीं निकला था । पर आज सहसा ही जैसे कोई दबी चिंगारी भभक उठी थी ।''[1]

बसन्ती का यह आक्रोश क्षणिक था । सामान्य होते ही वह अपने ढर्रे पर चलने लगती है ।

रुक्मी के बच्चा होने से बसन्ती के जीवन में एवं स्वभाव में अस्थिरता उत्पन्न होने लगती है । ईर्ष्या डाह और असुरक्षा का भय उसे त्रस्त किये रहता है जो उसकी दिन-रात की नींद उड़ा देता है ।

''बसन्ती को जो अड़चनों, मुसीबतों के बीच भी लापरवाह रहा करती थी, अब सारा वक्त यही लगता जैसे वह परेशानियों के घटाटोप में घिर गयी है । सारा वक्त उसके मन को धुकधुकी लगी रहती, बात-बात पर कुढ़ने-खीझने लगती ।''[2]

रुक्मी के प्रति सौतिया डाह और उसके बच्चे के लिए अशुभ सोचने वाली इस स्त्री के उसके भीतर किसी कोने में छिपी हुई इन्सानियत, क्रूर जननि

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 140

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 150-51

से रोकती है । रम्मी और बसन्ती दोनों एक-दूसरे के प्रति तीव्र ईर्ष्या और द्वेष की भावना से भर उठती है । एक-दूसरे के लिये दुर्भाव लिए एक ही छत के नीचे रहती रही थी ।

—''स्थिति अब यह बन गयी थी कि उस छोटी सी कोठरी में जैसे दो साँप लोट रहे थे । रम्मी अपने बच्चे को बसन्ती के साए से बचाती थी और सारा वक्त शंकित बना रहता और दोनों की आँखों में एक तरह का तिरस्कार आ गया था ।''[1]

इस बीच बसन्ती पर चोरी का इलजाम लगता है । उसकी मानसिक दशा अत्यन्त विकट हो उठती है । ऐसी परिस्थितियों से गुजरती हुई बसन्ती मानसिक यातनाएँ झेलती है । उसके मन में उमड़ते दुर्भाव तभी शान्त होते हैं जब उसकी सुप्त ममता जागृत होती है । एक दिन रम्मी के बच्चे की तबीयत खराब होने पर बसन्ती उसे डाक्टर के पास ले जाती है । बच्चे को दवा दिलाने के पश्चात बसन्ती की मनः स्थिति में स्थिरता आने लगी । ''सूरज की पहली किरणों में कोहरे की धुन्ध छटने लगी थी । बसन्ती को लग रहा था जैसे कोई दुःस्वप्न टूट गया हो और आस-पास की चीजें फिर से सुहावनी नज़र आने लगी है ।''[2]

बसन्ती अपनी अव्यवस्थित मनः स्थिति का दोषी श्यामा बीबी को मानती है । जिनकी बातों से उसे दुर्भाग्यपूर्ण भविष्य नजर आता है । ईर्ष्या और घृणा की भावनाएँ प्रबल होती है ।

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 152

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 157

''श्यामा बीबी के पास बैठने पर उसे लगता है जैसे श्यामा बीबी हर बार कोई पर्दा उठा देती है और पर्दे के पीछे से कोई डरावना, घिनौना जन्तु अपने जहरीले दांत और लाल-लाल आंखें दिखाता हुआ सामने आ खड़ा होता है।''1

वह श्यामा बीबी के घर जाना छोड़ देती है और उसके मन के दुर्गुण मानवीय संवेदनायुक्त गुणों के समक्ष पराजित होते हैं और पुनः बसन्ती सामान्य स्थिति में आ जाती है। बसन्ती नये जोश से अपने नये काम की शुरूआत में लग गई। इस बार उसने तन्दूर चलाने का काम आरंभ किया जिसमें दीनू भी उसका हाथ बंटाने लगा था। वह जीवन की सुख रूपी मरीचिका के पीछे भटकती हिरणी के समान है जिसे सुख रूपी मरीचिका सदैव छलती रहती है। बसन्ती का नया काम चल नहीं पाता और दीनू और रूक्मी अपने बच्चे को लेकर गांव चले जाते हैं। बसन्ती पूर्णरूप से पराजित होते हुए भी अपने बेटे के लिए फिर भी जीवन की कठिनाईयों से संघर्षरत रहने को तैयार हो जाती है। किन्तु एक और प्रहार उसकी जीविका पर भी होता है, सरकार के डण्डे का। उसका अनाधिकृत रूप से बना तन्दूर तोड़ दिया जाता है। टूटी बस्ती के लोग जहां अपने रोजगार को फिर से जुटाते हैं किन्तु एक बार फिर उसके ये कार्य गैर-कानूनी घोषित कर तहस-नहस कर दिये जाते हैं।

''मलबे के ढेर की ओर नजर घुमाकर, श्यामा बीबी सिर हिलाते हुए बोली —''मैंने कहा नहीं था यहां तन्दूर मत लगाओ। किसी दूसरे आदमी की जमीन पर तुमने अपना तन्दूर बना लिया था।''

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 154

''तो क्या बीबी जी ।'' बसन्ती ने अनमनीसी आवाज में कहा ।

''अब उसे पुलिस ने तोड़ डाला या नहीं ?''

बसन्ती चुप रही, सिर को तनिक झटक दिया । एक उदासी मुस्कराहट उसके चेहरे पर खेल रही थी ।''[1]

बसन्ती जिन्हें अपना मानती है वास्तव में वे उसके अपने नहीं होते । जिस प्रकार उसके वर्ग के लोग अनाधिकृत क्षेत्र में बस्ती बसाते हैं और सरकारी प्रशासन इन बस्तियों को तोड़ देते हैं, उसी प्रकार बसन्ती अपने जीवन का दायित्व उस व्यक्ति के कन्धों पर डालती है जो उसका नहीं पराया था । ठीक उसी प्रकार जैसे किसी दूसरे की जमीन पर वह अपना तन्दूर बनाती है और वह तोड़ दिया जाता है । बसन्ती जीवन-पर्यन्त संघर्ष करने के लिए तत्पर है किन्तु यह संघर्ष और समाज के प्रतिविद्रोह करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं कर पाती । उसके वर्ग व उसके लिए यह एक त्रासदी का विषय है कि उनके अपनी जमीन नसीब नहीं, दूसरों की जमीन पर व कमजोर आधारशिला पर बड़ी मेहनत से बने उनके घरौंदे तूफान का एक झोंका आने पर तहस-नहस हो जाते हैं ।

दीनू का बसन्ती को इस प्रकार अकेले छोड़ जाना, पर बसन्ती के पास फिर से अपनी दुनिया में लौट जाने के कोई विकल्प नहीं रह जाता । और वह ''पिछली सड़क की ओर मुड़ गयी ।'' —''यह वाक्य बसन्ती के प्रसंग में अत्यन्त सांकेतिक एवं अर्थगर्भित है । यह दूर तक सोचे बिना मन की

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 167-68

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 168

लगने में स्वच्छन्दतापूर्वक विद्रोह कर देने और जीवन में लापरवाही बरतने का अनिवार्य परिणाम है। बसन्ती का जीवन-संघर्ष इस निष्कर्ष और परास्त होकर सर नहीं धुनती या बैठ नहीं जाती। बसन्ती का चरित्र हिन्दी कथा-साहित्य में सर्वथा नया है, क्योंकि वह नये यथार्थ की उपज है। भीष्म साहनी की खूबी है कि उन्होंने नये यथार्थ की उपज को परखा और गम्भीर कला से रंगकर उसे प्रस्तुत किया। बसन्ती का चरित्र हिन्दी कथा-साहित्य को उनकी महत्वपूर्ण देन है।"[1]

भीष्म साहनी ने बसन्ती के चरित्र का बाहरी और भीतरी दोनों पक्षों का सजीवतापूर्ण चित्रांकन किया है। बसन्ती के साथ एक अन्य स्त्री पात्र रुक्मी की मनःस्थिति का भी यथार्थपूर्ण चित्रण करने में लेखक सफल रहे हैं।

रुक्मी के मन में बसन्ती के प्रति आरंभ से ही डाह और ईर्ष्या की भावना बनी रहती है। गांव की अनपढ़ और शहरी तौर-तरीकों से अनजान यह युवती अपने पति के साथ गृहस्थी बसाने शहर आती है। शहर आने का उसका मुख्य उद्देश्य अपना डाक्टरी इलाज कराना है। दो बार गर्भपात हो जाने के कारण वह मां नहीं बन पाई और पूजा-पाठ, व्रत- अनुष्ठान सब करने के पश्चात वह शहर लाई गई थी। किन्तु बसन्ती को अपने घर पहली बार जब देखती है तो —"रुक्मी का दिल धक्-से रह गया था, शहरी तरीकों से अनभिज्ञ होने पर भी वह अन्दर ही अन्दर मसोसती रही थी।"[2]

रुक्मी दीनू की पत्नी थी और दीनू का उसके प्रति दायित्वहीन रवैया नहीं था जैसा कि बसन्ती के प्रति था। रुक्मी उसकी वैवाहित स्त्री

1- आलोचना - बगेन्द्र ठाकुर (अप्रैल-जून- 83), पृ0 65

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 135

थी । गाँव की सीधी-सादी गोरी चिट्टी यह स्त्री मन में इस प्रकार के मानवोचित भाव रखती है । ''रुक्मी बसन्ती से हम भी खाती थी और डाह भी करती थी पर अन्दर ही अन्दर । वह दिल्ली में अपने पति के साथ आयी थी पर यहाँ पति का दबदबा भी वह नहीं रह गया था जो गाँव में हुआ करता था । यह कलमुँही कौन है, जो कोठरी में आ घुसी थी और अपने बेटे को भी साथ ले आयी थी, और मेरी छाती पर आकर बैठ गयी है । कभी-कभी एक सालती हुई लपट उसके अन्दर उठती और उसका कलेजा चाट जाती । पर फिर उसकी निस्सहायता उसे और भी ज्यादा दुर्बल और शिथिल बना देती ।''[1]

बसन्ती के सहज एवं सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार के समक्ष रुक्मी की ये भावनाएँ दबने लगी थी और वह बसन्ती के साथ घुलने लगी । रुक्मी को बसन्ती से एक उम्मीद यह भी हो गई थी कि वह उसका इलाज करवायेगी और वह माँ बन पायेगी । रुक्मी और दीनू दोनों बसन्ती से दबने लगे थे और उसके सामर्थ्य को देख उससे उम्मीदें भी रखते है । रुक्मी ''बसन्ती पर आस लगाये बैठी थी कि शायद इसकी मदद से कभी उसका गर्भ टिक जाये । उधर दीनू पहले की तरह ही ऐंठता था, पहले ही की तरह गुर्राता भी था, अपनी हुकूमत भी चलाता था, पैसे भी बसन्ती से ऐंठ कर ही ले जाता था लेकिन अन्दर-ही-अन्दर। वह भी जानता था कि बसन्ती पर वह पहले की तरह हुकूमत नहीं चला सकता ।''[2]

दीनू के रूप में भीष्म साहनी ने एक ऐसे पात्र का चरित्रांकन किया है जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बसन्ती को साधन बनाता है । वह

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 143

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 143

बसन्ती के शरीर का ही नहीं उसके द्वारा कमाये गए पैसे का भी भरपूर उपयोग करता है । बसन्ती से वह प्रेम नहीं करता किन्तु उसके प्रति उसके मन में अपनत्व की क्षीण भावना है जो धीरे-धीरे समाप्त होती जाती है । बसन्ती द्वारा उसकी वासनापूर्ति हो सकती थी, इस कारण वह उसे भगा कर ले आता है । बसन्ती उसके पुत्र की माँ है, इस कारण उसे अपने घर में आश्रय और दूसरी पत्नी के रूप में स्थान देता है, किन्तु बसन्ती की स्थिति रखैल सी ही होती है । बसन्ती के मन में अपने लिए विश्वास और प्रेम की भावनाएँ जागृत कर उसके साथ छलावा करता है ।

बसन्ती और रम्मी दोनों द्वारा अपनी कामोत्तेजना शान्त कर अपने पौरुषत्व के प्रति सन्तुष्ट होता है । किन्तु अपने परिवार के पालन के दायित्व के प्रति वह सचेत होना नहीं चाहता । काम-काज के नाम पर बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाता है छोटा-मोटा काम करना उसे सुहाता नहीं ।

''इस काम में क्या रखा है । मैं तो किसी फैक्टरी में काम करूँगा, या सरकारी दफ्तर में चपरासी बनूँगा ।''

किन्तु उसे इस प्रकार का कोई काम नहीं मिल पाता । वह निठल्ला घर बैठा रहता हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह —
''बाहर बैठे-बैठे हुक्म चलाता था जो उसकी पुरानी आदत थी और रात को कभी रम्मी का तो कभी बसन्ती का शरीर विचोड़ता रहता था । लगता था उसने यही एक धन्धा अपना रखा है ।''[1]

---

1. बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ० 130

दीनू के स्वार्थी और लम्पट चरित्र को बसन्ती पहचान जाती है किन्तु उसके प्रति आकर्षण को वह कम नहीं कर पाती । बुलाकी राम के समक्ष दीनू उसे अधिक अपना लगता है । दीनू को छोड़ उसके समक्ष कोई और विकल्प भी नहीं है, इसके अलावा दीनू से वह प्रेम करती है, उसके लिए सब सहती है । —''वस्तुतः दीनू का चरित्र एक ऐसे नौजवान का चरित्र है जो शहरी वातावरण में पुरस्पोषित अहंकार एवं धूर्तता से भरा हुआ है । उसके व्यक्तित्व में इन पहलुओं की अभिव्यक्ति बसन्ती के साथ उसके स्वार्थपूर्ण संबंध और उसे बेझिझक तोड़ देने के उसके व्यवहार में होती है । वैसे उसके व्यवहार में भी उतार चढ़ाव है । एक तरफ वह शुरू में मात्र वासनापूर्ण आग्रह से बसन्ती को अपने साथ रखकर शादी का स्वांग रचता है और उसे छोड़कर गांव चला जाता है, दूसरी तरफ पूरे एक साल के बाद पत्नी के साथ शहर लौटने पर जब बसन्ती अपने बच्चे के साथ उसे मिल जाती है, तो बच्चे के मोह में वह उसे फिर अपने साथ कर लेता है, बच्चे को प्यार भी करता है । बाद में जब उसकी गांव वाली पत्नी से बच्चा हो जाता है, तो बसन्ती के बच्चे के प्रति उसका प्यार लुप्त हो जाता है ।''[1]

भीष्म साहनी ने उपन्यास में प्रत्येक पात्र का बाहरी एवं भीतरी वास्तविक स्वरूप उद्घाटित करके रखा है । निम्नवर्ग और मध्यवर्ग की मानसिकता को भी प्रस्तुत करने में भीष्म जी सफल रहे हैं । आधुनिक उपन्यास अपने युग के यथार्थ को पूर्ण संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करता है । जीवन के सुन्दर-असुन्दर दोनों रूपों को भीष्म साहनी ने कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है । बसन्ती तथा उसके वर्ग का संघर्ष-रत जीवन, मध्यवर्ग का निम्नवर्ग के साथ व्यवहार तथा मानवीय मूल्यों में हो रहे परिवर्तनों का

1- आलोचना - नगेन्द्र ठाकुर - पृ0 62

उल्लेख भीष्म साहनी ने पूर्ण स्वाभाविकता के साथ बसन्ती में किया है ।

उपन्यासकार ने मजदूर-वर्ग का जीवन जीने के लिए संघर्ष-रत रहना तथा अपने अधिकारों के लिए जूझने को भी उपन्यास में प्रस्तुत किया है । अपने से उच्च वर्ग द्वारा शोषित यह मजदूर-वर्ग जीवन की विडम्बनाओं से जीवन-पर्यन्त संघर्ष करता है । अशिक्षा का अभाव और रूढ़ सामाजिक रीति-रिवाज इसे ऊपर उठने नहीं देते, ऊपर से मध्यवर्ग द्वारा शोषण, इन सब के बीच यह शोषित वर्ग पिसता रहता है ।

उपन्यास में चित्रित मजदूर-वर्ग की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि वह जीवन-भर स्थायी रूप से बस नहीं सकता । कड़ी मेहनत से दो वक्त की रोटी जुटाने वाले ये मजदूर जब कहीं अपना बसेरा बसाते हैं तो शहर की स्वच्छता और शहरी कायदे-कानून का सवाल सरकार के समक्ष उठ खड़ा होता है और सरकार की तरफ से इन बस्तियों को हटाने में किसी प्रकार की देरी नहीं की जाती । निम्नवर्ग, सशक्त उच्चवर्ग और कायदे कानून पढ़े मध्यवर्ग के समक्ष निर्बल और असहाय है । वह बिना किसी विरोध के समर्पण कर बसे-बसाये घर छोड़ अनजाने स्थलों की ओर चल पड़ता है । यह वर्ग स्वयं को परिस्थितियों और नियति के नीचे दबा हुआ महसूस करता है । इसे मात्र को ही अपनी नियति मान जीता है ।

''ढलान अब लोगों से खचाखच भरी थी । सभी लोग मर्द और औरतें अपने-अपने टीन-कनस्तर उठाये, मूसलाधार बारिश में एक-दूसरे से टकराते, उलझते, नीचे उतर रहे थे ।''[1]

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 23

बस्ती में बवण्डर उठ खड़ा होता है और यह बवण्डर सामाजिक अव्यवस्था का भी द्योतक है। कोहरा छाया होना व धुन्ध व बादल छाना, बिगड़े हुए मौसम का संदर्भ देकर लेखक ने समाज व देश की बिगड़ी हुई दशा व देश में फैली अव्यवस्था का संकेत किया है।

बस्ती वालों पर सरकार के क्रूर कायदे-कानून प्रहार करते हैं। बस्ती तोड़ने में पुलिस के साथ स्वयं बस्ती वाले कुछ मजदूर मजदूरी के लालच में अपने लोगों के घर तोड़ने में जुट जाते हैं।

''अपनी ही बस्ती के घर तोड़ रहा है, हरामजादे। सारी शरम बेच खायी है। तुझे कोढ़ पड़े।''

''अब अपनी कहाँ है। अब सरकार की है।''

इस पर भीड़ में से एक आदमी चिल्लाया, ''तूने भी तो अपनी कोठरी बनायी थी।''

''बनायी थी तो बनायी थी'' ऊपर से जवाब आया ''सरकार तो इन्हें तोड़ेगी ही। हम अपनी मजदूरी क्यों छोड़ें। हम नहीं तोड़ेंगे तो कोई दूसरा आकर तोड़ेगा।''[1]

अभावग्रस्त जीवन जीने वाले इस वर्ग में विद्रोह करने का साहस वैसे ही कम होता है, ऊपर से एकता का अभाव व स्वार्थी प्रवृत्तियों के आधिक्य के कारण एकजुट होकर शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश व्यक्त करने में ये असमर्थ होते हैं। बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने वाले, लाखों लोगों की आवास-समस्या सुलझाने वाले अपनी मेहनत से उच्चवर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति करने

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 25

के लिए जुटे यह मजदूर-वर्ग अपना सिर ढकने के लिए महज एक छत के लिए भटकते रहते हैं।

रमेश नगर की कोठियों में रहने वाला मध्यवर्ग मजदूरों के प्रति सहानुभूति रखता है, किन्तु अपने हितों और स्वार्थों को दृष्टि में रखकर जीने वाला यह मध्यवर्ग मात्र तमाशा देखने के और बेकार के नसीहतें देने के, कुछ और नहीं कर सकता।

"कानून कानून है, क्या किया जाये।" चार-नम्बर ब्लाक वाले आहूजा साहिब कह रहे थे, मैंने मूलराज से कहा भी था। मैंने कहा मूलराज, तुम कोठरियाँ पक्की नहीं करो। पक्की कोठरियाँ बनाना गैर-कानूनी है।"

"पक्की कोठरियाँ बनाना ही नहीं, सरकारी ज़मीन पर कब्जा करना भी गैर-कानूनी है। बैठे-बैठाये मुफ्त में अपनी कोठरियाँ बड़ी कर लीं।"[1]

कोठियों और कोठरियों में रहने वाले दोनों वर्गों में वर्गगत ही नहीं अपितु वैचारिक स्तर पर भी काफी अन्तर है। कायदे-कानून को समझने वाला मध्यवर्ग अपने वर्तमान के साथ भविष्य की सोच भी रखता है, किन्तु निम्नवर्ग के मजदूर लोग वर्तमान में जीते हैं और किसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, उनकी दृष्टि भविष्य को नहीं देख पाती, क्योंकि अपने वर्तमान को जीने के लिए उन्हें बड़ी मेहनत और संघर्ष करना पड़ता है। भविष्य की योजना बनाने के लिए उस वर्ग के पास न तो समय होता है और न ही सोचने

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 28

की शक्ति । मध्यवर्ग अपने लिए जीता है और उच्चवर्ग की ऊंचाई तक पहुंचने के लिए संघर्षरत रहता है । यह वर्ग पढ़ा-लिखा, लाभ-हानि की चिन्ता करते हुए चलता है । लेकिन निम्नवर्ग अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी तथा भाग्य को कोसने के सिवाय कुछ और कर पाने में अपने को असमर्थ पाता है ।

रूढ़िग्रस्त सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक क्रिया-कलापों में फंसा यह मजदूर वर्ग अर्थहीन हीन-भावनाएं व मनोविकार मन में पाल लेता है । धर्म के ठेकेदार डरा-धमका-कर उनका शोषण भी करते हैं । ज्वाला देवी का प्रसंग प्रस्तुत कर लेखक ने श्रद्धालु जन व धर्म के ठेकेदारों की मानसिकता का सही अंकन किया है ।

मध्यवर्ग की मानसिकता, उनके आडम्बरयुक्त चमक-दमक के प्रति आकर्षण व निम्नवर्ग के साथ मध्यवर्ग का रवैया और दिल्ली शहर में रहने वाले उच्च-मध्यवर्ग के लोगों का रहन-सहन, विचारधारा और नियमों का उल्लेख भी लेखक ने उपन्यास में किया है । एक तरफ नैतिकता का ढोल पीटने वाले सूरी साहब की बड़ी-बड़ी बातें — ''वह हमारी क्या लगती है ? हमें क्या फर्क पड़ता है कि वह कहां रहती है, कहां सोती है, कहां झांकती फिरती है ? मगर नहीं, हमें इस बात से गैरत आती है, पर तुम्हें नहीं आती ।''[1] किंतु साथ ही बसन्ती के जाते ही पत्नी से घर भर की चीजें देख लेने का फरमान करते हुए अपने दोगले चरित्र का पर्दा-फाश भी कर देते हैं । —''अपनी चीजों को देख-संभाल लिया, है ना ? इन लोगों का कोई भरोसा नहीं । जिस बर्तन में पीते हैं, उसी में छेद करते हैं । कहीं कुछ उठा कर ही चम्पत न हो गई हो ।''[2]

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 100

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 102

बसन्ती का मेहनत-मजदूरी कर अपने बेटे को अच्छा खाना व कपड़ा पहने देख कर श्यामा बीबी उसे चोर समझने लगती है।

''देर तक श्यामा बीबी बसन्ती के चेहरे की ओर देखती रही, फिर डिब्बे को वापस थैले में रखते हुए बोली, ''आगे से आओ तो अपना थैला नीचे आंगन में रखकर आया करना बसन्ती।......''[1]

मध्यवर्ग की धर्मशीलता, असहिष्णुता, पाखण्डी और अमानवीय व्यवहार का बसन्ती को जहाँ साक्षात्कार होता है वहीं दूसरी ओर वह इस वर्ग से प्रभावित भी बहुत है, उनके तौर-तरीके, फिल्मी ढंग से पत्नी का पति को आलिंगन, टा-टा कहना, बच्चे को साफ-सुथरे कपड़े पहनाना, डिब्बे का दूध पिलाना इत्यादि। फिल्मी गाने, फिल्मी सपनों की शुरुआत भी इन्हीं कोठियों में टेलीविजन और रेडियो को देख-सुनकर ही हुई थी। मध्यवर्ग की चमक-दमक से बसन्ती बहुत प्रभावित हुई है और इसी कारण जीवन को एक सफल अभिनेत्री की तरह जीने का अभिनय वह करती है। फिल्मी अभिनेत्री को कार्य करती देख, उसे सच मान, अपने वास्तविक जीवन में जोखिम उठा कर बसन्ती भी करने से घबराई नहीं। उसने प्रेम किया, घर से भागी, शादी का स्वांग भी रचा तो पूरी तरह से फिल्मी अन्दाज में।

''चांद की चांदनी में बरामदे में खड़े दीनू का चेहरा उसे बड़ा गोरा-चिट्टा और सुन्दर लगा। उसकी आस्तीन पकड़ कर और उसके पास सटकर बसन्ती धीरे-धीरे बोली अब हाथ पकड़ा है तो छोड़ना मत। उसने कुछ-कुछ फिल्मी अन्दाज में कहा।''[2]

1- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 148-149

2- बसन्ती - भीष्म साहनी - पृ0 63

भीष्म साहनी ने मध्य-वर्ग का वास्तविक रूप जिस खूबी के साथ प्रस्तुत किया है वह उनकी लेखन-कला की सार्थकता का परिचय देता है। श्यामा बीबी के धार्मिक आडम्बर, मध्यवर्ग के बुजुर्ग व वृद्धजन जो उपेक्षित और एक फालतू की वस्तु बनकर बागों में बैठ कर के-सिर-पैर की बातें कर जीवन के अन्तिम छोर तक पहुँचने का इन्तजार कर रहे हैं और निम्नवर्ग को ऊपर न उठने देने का प्रयास।

'बसन्ती' उपन्यास में भीष्म जी ने नारी जीवन की समस्याओं व उसके दोहरे-तिहरे शोषण का अंकन किया है। पुरुष-समाज के बनाये रीति-रिवाजों व रूढ़ परंपराओं में जकड़ी नारी, अपने को मुक्त करवाने में संघर्षरत है। बसन्ती भी इसी संघर्ष में शारीरिक एवं मानसिक रूप से आहत होती है। हर तरफ से उसका शोषण किया जाता है। मजदूर-वर्ग का शोषण व उसकी स्थिति का वास्तविक चित्र भीष्म जी ने 'बसन्ती' उपन्यास में खींचा है। कलात्मक दृष्टि से भी यह उपन्यास सार्थक बन पड़ा है।

भाषा : विविध स्तरीय भाषा के गठन की कोशिश

साहित्यकार अनुभूत-अनुभवों को अभिव्यक्ति देने में समृद्ध एवं सशक्त भाषा का प्रयोग करता है। लाज के मतानुसार —''उपन्यासकार का माध्यम भाषा है। वह उपन्यासकार की हैसियत से जो कुछ करता है, भाषा में तथा भाषा के माध्यम से करता है, भाषा में तथा भाषा के माध्यम से करता है।''[1]

दरअसल, भाषा युगानुकूल परिवर्तित होती रहती है। समाज में आ रहे परिवर्तनों का भाषा पर भी प्रभाव पड़ता है। युगीन यथार्थ को प्रस्तुत करने में साहित्यिक भाषा के रूप में परिवर्तन होते रहते हैं। डा0 जैनेन्द्र के अनुसार —''कहानी - उपन्यास में भाषा सिर्फ अर्थ देकर सार्थक नहीं हो सकती, भाव को उसे युगपत् चित्रित और जागृत करते जाना होगा।''[2] यहाँ उन्होंने साहित्यिक भाषा के कार्य, विशेषकर कहानी और उपन्यास की भाषा की समाज में क्या भूमिका होनी चाहिए, इस ओर संकेत किया है। आधुनिक भौतिक जीवन की विषमताओं को हिन्दी कथा-साहित्य में प्रस्तुत करना एक विकट कार्य है। जिसे पूर्ण करने के लिए भाषा अपनी भूमिका निश्चित रूप से पूर्ण सार्थकता के साथ निभा रही है।

आधुनिक उपन्यासकार ने भाषा की संरचना में अपने युगीन सत्य को संप्रेषित करने के लिए बहुत से परिवर्तन किये हैं। मानवीय संवेदनाओं को गहराई से अभिव्यक्त करने के लिए नयी वाक्य संरचना का आधार लेना पड़ा। बड़े वाक्यों के स्थान पर चस्तु, अर्थपूर्ण लघु वाक्यों का प्रयोग, अधूरे अव्यवस्थित

1- फाउलर, रोजर लिंग्विस्टिक्स - (नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास से उद्धृत)
2- साहित्य का श्रेय और प्रेम - पृ0 156

तथा कभी-कभी मात्र शब्द संकेतों से युक्त वाक्य आधुनिक उपन्यास की भाषा-गत विशिष्टताओं के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। क्रिया-पदों का लोप, अन्तराल चिन्हों तथा अल्पविराम इत्यादि के द्वारा वाक्य की विशिष्ट संरचना भी देखने को मिलती है। गद्य में वर्णनात्मक भाषा का प्रयोग-वाक्य संरचना की एक अन्य विशिष्टता दर्शाता है।

आधुनिक उपन्यासों में भाषिक परिवर्तन ही दृष्टिगोचर नहीं होते अपितु —'' युवा उपन्यासकारों ने अनेक कथा-रूढ़ियां तोड़ी हैं —''रूप और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से। शिल्प की दृष्टि से सामाजिक उपन्यास कथानक, पात्र-चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल वातावरण आदि परंपरा से चले आ रहे प्रतिमानों की अवहेलना करता है।''[1] इस प्रकार की अवहेलना करना, उपन्यासकार के लिए युगीन यथार्थ को उद्घाटित करने में कभी-कभी सहायक सिद्ध होता है। विशेष रूप से उन परिस्थितियों में जब कि परंपरागत - प्रतिमान अपना प्रभाव एवं सार्थकता खोने लगते हैं। ऐसी स्थिति में नये प्रयोग एवं प्रतिमान स्थापित किये जाते हैं। वस्तुतः युगानुकूल भाषा में परिवर्तन होते रहते हैं।

समाज की सच्चाईयों को अपनी समृद्ध एवं सहज भाषा में अभिव्यक्त करने वाले उपन्यासकारों में भीष्म साहनी का नाम उल्लेखनीय है। भीष्म साहनी एक यथार्थवादी साहित्यकार है। अपनी सधी हुई भाषा द्वारा सामाजिक यथार्थ को उन्होंने अपने कथा-साहित्य में प्रस्तुत किया है।

भीष्म साहनी ने अपनी कहानियों की तरह उपन्यासों में भी मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग की समस्याओं को पाठकों के समक्ष रखा है। अपने विचारों को

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - पृ० 312

उन्होंने आम बोलचाल की भाषा द्वारा संप्रेषित करने का जो प्रयास किया है वह अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक है । सरल एवं सधी हुई भाषा द्वारा भीष्म जी ने अपने उपन्यासों में जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित किया है ।

भीष्म साहनी की भाषागत विशिष्टताओं की ओर देखने पर हम पायेंगे कि उन्होंने युगानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है । ग्रामीण एवं शहरी पात्र की भाषा का अन्तर भी उनके उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है । पात्र एवं परिवेश अनुरूप भाषा प्रयुक्त की गई है ।

भीष्म साहनी की भाषा सहज एवं अकृत्रिम है । वह कथानक को प्रवाहमान रखती है । अनावश्यक शब्द जाल बुनने का भीष्म जी ने कहीं भी प्रयास नहीं किया । इसी कारण भाषा न तो कहीं क्लिष्ट बन पड़ी है और न ही असहज । क्लिष्ट एवं विशुद्ध हिन्दी का प्रयोग, न करके आम-बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है । भीष्म जी की भाषा में हिन्दी सृजनशील रूप समक्ष आता है । उर्दू-फारसी, अंग्रेजी और स्थानीय बोलियों का प्रयोग कृति में रोचकता एवं सरसता के बढ़ाने में सहायक हुआ है ।

भीष्म जी का पंजाबी परिवार एवं परिवेश से संबंधित होने के कारण, पंजाबी का प्रभाव उनके साहित्य पर अवश्य देखने को मिलता है । पंजाबी-जन-जीवन से संबंधित कथानक लेने के कारण और पंजाबी मध्यवर्ग से उनकी गहरी पहचान होने के नाते यह स्वाभाविक ही है । जिस परिवेश और वातावरण में लेखक रहता है, उसकी जानकारी और उसके साहित्य पर उसके परिवेश का प्रभाव आ ही जाता है । पंजाब के लोक गीत, कहावतें और शब्दावली का उनके उपन्यासों में स्थान-स्थान पर प्रयोग हुआ है । कुछ-एक मुहावरों व कहावतों का प्रयोग तो उनके चारों उपन्यासों में हुआ है ।

भीष्म साहनी की भाषा की एक मुख्य विशिष्टता है —'चित्रात्मकता' । किसी पात्र अथवा घटना विशेष का अपनी लेखनी द्वारा चित्रांकित कर पाठक को सम्मुख प्रस्तुत करने में भीष्म जी सिद्धहस्त है । अपनी सूक्ष्म विश्लेषण-शक्ति द्वारा वह किसी भी प्रसंग को मूर्त्तरूप देने में समर्थ लेखक है । लेखक जन-जीवन से जुड़ता है और जिस वर्ग का चित्रण वह करता है उसके बाह्य ही नहीं जन-जीवन को भी अपनी दूर-दृष्टि से पहचानता है । उसका विश्लेषण करता है ।

वस्तुतः भीष्म साहनी ने अपने चारों उपन्यासोंमें भारतीय जन-जीवन में व्याप्त समस्याओं को प्रस्तुत करने में सशक्त भाषा का प्रयोग किया है । छोटे-छोटे चुस्त वाक्य संरचना द्वारा वास्तविकताओं को उद्घाटित करने का एक प्रयास लेखक ने किया है । समाज की कुरीतियों व असंगतियों पर तीखे व्यंग्य किये गए हैं । यहाँ उनकी भाषा ने व्यंग्यात्मक रूप भी धारण किया है ।

'झरोखे' में भीष्म साहनी ने अपने जीवन के संस्मरणों को आत्म-कथानात्मक शैली में प्रस्तुत किया है । बचपन से युवावस्था तक के विशेष प्रसंगों को जो किसी भी व्यक्ति के भावी जीवन को प्रभावित करते हैं उनका ब्यौरा लेखक ने अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक भाषा में दिया है । एक पंजाबी मध्य-वर्गीय परिवार तथा शहरीपरिवेश का चित्रण पूर्ण सजीवता के साथ किया है । उपन्यास में प्रयुक्त हिन्दी में पंजाबी, फारसी और अंग्रेजी शब्दों का स्थान-स्थान पर प्रसंगानुकूल प्रयोग हुआ है ।

उपन्यास में अनेक पंजाबी शब्दों जैसे - प्रारब्ध, गुराज, लैम्प, हौसला, बापारी, सैरों, शगड़ी-बगड़ी, तेरियाँ, डाढ़ा, सुफा, डंगर, बेवाक, चित्तड़ी,

चट्टी, कडा, वेला-वक्त, हुकुमत, ब्यार, भलीलोग इत्यादि का सटीक प्रयोग हुआ है।

लेखक ने पंजाबी, लोकगीत, लोकोक्तियाँ व मुहावरों का भी उपन्यास में प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है।

-'' मोती राम करो समझ पियारे
अन्त काल जम घेरेगा ।
विसार विसारियों ई नाम सांई दा
आकड़ आकड़ चलने तूं,
पहन पोशाकां खावें, खुराकां
जम दा बकरा पलने तूं.... [1]

x x x

कोई दम दा मेला, नगरी मैं बोलो,
अल्लाह दे प्यारे, नगरी मैं बोलो ।
बेपरवाहियां तेरियां ते तूं डाढा बेपरवाह
वगदियां नदियां ठलकों, तु ठलों करें दरिया
कोई दम दा मेला ।''[2]

x x x

'मुल्ला, मियां मशाल ची, तीनों एक समान ।
लोकां नु दस्सण चानणां, आप हनेरे जान ।।''[3]

1- झरोखे - भीष्म साहनी - पृ0 10
2- झरोखे - भीष्म साहनी - पृ0 18
3- झरोखे - भीष्म साहनी - पृ0 60

वाक्य-विन्यास में भी पंजाबी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पंजाबी कहावतें जैसे — "एक है जो मंजी को तरसते हैं, दूसरे हैं जो सैलियों को तरसते हैं।"[1]

"पक्षियों के बच्चों के जब पंख निकल आते हैं.....
वे 'उड़ारी' मारकर निकल जाते हैं।"[2]

उपन्यास में उर्दू-फारसी का प्रयोग भी लेखक ने अनेक स्थलों पर किया है। -- शरिकया, मुशायवी, माफ, बेशुमार, वजीर, मुल्ला, रूमी टोपी, मदद, बोस्तां, गुलिस्तां, रंगसाज, दफ्तर इत्यादि।

फारसी कहावतें — "जो तुम्हें मिट्टी के ढेर में से मुट्ठीभर मिट्टी उठाना हो तो भी किसी बड़े ढेर से उठाना।

अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। कमीशन बेंच, एफ०जी०आर० पोस्ट कार्ड, मनी-आर्डर, बैंक, चेकबुक, एजेंसियां, डी० ओ० आदि।

संस्कृत के श्लोक और वैदिक मन्त्रों का भी उपन्यास में उल्लेख किया गया है।

(मन्त्र) तमीश्वराणां परमं महेश्वरं[3]

तम् देवतानाम्.....

x x x

(श्लोक) त्वमेव माता च पिता त्वमेव

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।"[4]

1- झरोखे — भीष्म साहनी — पृ० 146

2- झरोखे — भीष्म साहनी — पृ० 147

3- झरोखे — भीष्म साहनी — पृ० 48

4- झरोखे — भीष्म साहनी — पृ० 75

'कड़ियाँ' में भीष्म साहनी ने आधुनिक भौतिक जीवन की विषमताओं से घिरे मानव की मनः स्थिति को उद्घाटित करने के लिए उसी के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। दुविधाग्रस्त मानव के चरित्र को प्रस्तुत करने में सामान्य भाषा समर्थ नहीं हो पाती। भाषा में वक्रता का गुण ही उसे अभिव्यक्त करने में समर्थ रहता है। मनोवैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग मानव के मानसिक द्वन्द्व व मानसिक स्थिति का स्वाभाविक रूप से चित्रण प्रस्तुत करने में सहायक हुआ है। भाषा युगानुकूल एवं समाज के विकास से प्रभावित व विकसित होती रहती है।

भीष्म साहनी, 'कड़ियाँ' में दाम्पत्य जीवन की समस्याओं और मानव-मन की दुविधा को छोटे-छोटे चुस्त एवं सटीक वाक्य-रचना के द्वारा अभिव्यक्ति देने में सफल रहे हैं। सहज भाषा द्वारा मानसिक द्वन्द्व दर्शाने का प्रयास लेखक ने किया है।

महेन्द्र और प्रमिला की मानसिक दशा को अभिव्यक्त करने के लिए मनोवैज्ञानिक शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। — द्विविधा की भीत, मानसिक रोग, तनावग्रस्त, हिस्टीरिया का दौरा पड़ना, अवसाद, झल्लाना, यन्त्रवत्, सनक, घुटन, तोष, परिताप, आत्मानुकम्पा इत्यादि।

पंजाबी, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी स्थान-स्थान पर सटीक प्रयोग हुआ है।

पंजाबी शब्द जैसे — चुन्नी, निभणा, दर्जी, बीबी, भलीमानुस, बासी, पल्ले इत्यादि।

उर्दू के शब्द जैसे — गरीब नवाज़ जेअम, मुवक्किल, नजाकत, संजीदगी, फर्ज़, रुसवाई, इबारत, सिलाफ इत्यादि।

अंग्रेजी – पेण्टर, सोसायटी, कमलिस, टैक्सी, ड्रामा, बोर्ड, ड्रेसिंग गाउन, ग्राउण्ड, डायनिंग-रूम, टवीड् कोट, रोड, कम्पेन्सेशन, केशियर, हाउ नाट्स, परफोरमेन्स इत्यादि ।

कई स्थलों पर वाक्य रचना पर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है ।–

1) ''मगर पीटना क्या शरीफों वाली बात है ?''[1]

2) ''ले-देकर दस जमात पढ़ी है तेरी सहेली ।''[2]

3) ''सीतामाई सीधी थी न, तिल-तिल कर मरी ।''[3]

4) ''डर कर रहेगी तो तुझे और लताड़ेगा ।''[4]

5) ''हां, हां, बहुत कुर्बानियां नहीं करते ।''[5] इत्यादि

इस उपन्यास में हिन्दी के मुहावरे और कहावतों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है ; जो कथा में प्रवाहमयता एवं रोचकता बढ़ाने में सहायक हुए हैं ।

जैसे – गहरी टीस उठना, धुंध सी छाना, ढिंढोरा पीटना, अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मार बैठा । सांप के मुंह में छिपकली, छोड़े तो अंधा, खाये तो मौत । जल से फेंकी हुई मछली की तरह छटपटाने लगा । इत्यादि ।

'तमस' में भीष्म साहनी ने देश-विभाजन की पूर्ववेला के वातावरण की विभीषिका को वर्णित करने के लिए सशक्त भाषा का प्रयोग किया है ।

1- कड़ियां – भीष्म साहनी - पृ० 109

2- कड़ियां – भीष्म साहनी - पृ० 110

3- कड़ियां – भीष्म साहनी - पृ० 82

4- कड़ियां – भीष्म साहनी - पृ० 68

5- कड़ियां – भीष्म साहनी - पृ० 60

सांकेतिक शैली द्वारा समाज में अनिष्टकारी शक्तियों पर तीखे एवं सटीक व्यंग्य भी किये हैं। ''भाषा में व्यंग्य के प्रयोग ने आज के उपन्यासों को इतना सक्षम बनाया है कि वे परिस्थितियों के उघाड़ का उसमें छिपी वास्तविकता के आंतरिक विधान को प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल है।''[1] डा० विवेकी राय के अनुसार '' 'तमस' का व्यंग्य अर्थ व्यंग्य है, स्थितियों को आत्मसात करने के बाद भीतर से उबल पड़ने वाला।''[2] 'तमस' में व्यंग्य तीखे और सटीक बन पड़े हैं।

'तमस' की भाषा सहज एवं सजग है। ''झकझोरने वाली तेज़ भाषा और भावावेग पूर्ण कथनों का अभाव इसी सजगता का प्रमाण है।''[3]

भाषा पात्रानुकूल है। उर्दू-फारसी के शब्दों के साथ पंजाबी और अंग्रेजी शब्दावली का भी प्रसंगानुकूल प्रयोग हुआ है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी स्थान-स्थान पर सटीक प्रयोग किया गया है। भीष्म साहनी ने अनावश्यक शब्द जाल फैलाने की चेष्टा नहीं की। आवश्यकतानुसार एवं प्रसंगानुकूल लेखक ने सधी हुई भाषा का प्रयोग किया है। ''हिन्दी का संभवतः पहला उपन्यास है, जिसमें लेखक कम से कम, प्रायः नहीं के बराबर, स्वयं कुछ कहता है। हिन्दी उपन्यासकारों के विचार-बोझ का जो रोग है, उससे भीष्म साहनी ने बहुत धैर्यपूर्वक अपने को पृथक रखा है।''[4]

'तमस' में लेखक ने अपनी सशक्त एवं सधी हुई भाषा द्वारा मार्मिक एवं हृदय-विदारक प्रसंगों का चित्रांकन सजीवतापूर्वक किया है। उपन्यास

1- नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास - क्षमा गोस्वामी - पृ० 172
2- हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ - पृ० 172
3- हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ - पृ० 171
4- हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ - पृ० 170

के प्रथम वाक्य द्वारा ही भीष्म साहनी ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का संकेत किया है। ''आले में रखे दीये ने फिर से झपकी ली।'' मानवीय मूल्यों की टिमटिमाती लौ की ओर संकेत कर अनिष्ट की सूचना दी है।

शहरी एवं ग्रामीण पात्रों एवं अंग्रेज दम्पति के संवादों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। मुस्लिम पात्रों के संवादों में उर्दू-फारसी के शब्दों का आधिक्य है जैसे – ''नहीं खुदापरवर, कभी यों भी हुआ है, आप पढ़े-लिखे खानदानी लोग हो, हम आपसे झाड़ू लगवायेंगे, तो बस - इस्तगफार। लाइए मुझे दीजिए, हमें क्यों दोज़ख की आग में धकेलते हो . . . ।''

उपन्यास में हिन्दू पात्रों द्वारा बोली गई हिन्दी भाषा में पंजाबी, व उर्दू के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। पंजाबी लोकगीतों व कहावतों का भी प्रयोग किया गया है।

पंजाबी गीत —''तैनी गाफला जाग न आयी, चिड़ियां बोल रहियां .....''2

''जिसके सिर ऊपर तू सुआमी, सो दुःख कैसे पावे।''

डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड के प्रसंगों में व अंग्रेज दम्पत्ति के संवादों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे – यूनिवर्सिटी, सेक्रेटरी, पिकनिक, स्पाट, लार्ड, माइथोलाजी, बीफस्टेक, बीयर, म्यूज़ियम इत्यादि।

पंजाबी शब्दों का प्रयोग जैसे — कुक्कड़ - कुक्कड़ी शरावी, बेवकूफ सिखड़ा, वाह गुरु, रब्बा, रामा सुबह सदके, रोका, सड़ि इत्यादि।

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 55

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ० 31

3xxतमसxxभीष्मxसाहनीxxपृ०x108

पंजाबी भाषा में संवादों का प्रयोग भी एकाध स्थलों पर हुआ है।—

''गजमण्डी तो इक बाबू नी पण्ड चुक्की आ रिहा सी ते बाबू कहण लगा, ''अज़ादी आवण वाली है।''[1] ''हां, मिठाई है। तूं निये बच्चिये, हां, मिठाई लियायां तेरे वास्ते।''[2]

उर्दू के शब्दों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है जैसे — रहनुमाई, आफ़रीन, अलामत, साहिबान, कदापरवर, तसबीह, अम्न, इत्यादि।

कहीं-कहीं तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे — मन्त्रोच्चारण, कण्ठस्थ इत्यादि।

'बसन्ती' की भाषा अपने पूर्ण कलात्मक सौष्ठव के साथ सहजता एवं चित्रांकन की विशिष्टता लिये है। भीष्म साहनी की भाषा में यह विशेषता रही है कि जिस वर्ग और चरित्रों का और परिवेश का वह अंकन करते हैं, भाषा उसी के अनुरूप होती है। शहरी मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की भाषा में अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। 'बसन्ती' में भीष्म साहनी ने अनेक प्रदेशों की भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा अपनी विविधता में प्रस्तुत हुई है।— ''बसन्ती की भाषा हिन्दी का ऊंचा, गम्भीर और प्रमाणीकृत रूप प्रस्तुत करती है, क्योंकि वह न तो राजस्थानी हिन्दी है, न देहाती और न पंजाबी हिन्दी ही। विभिन्न राज्यों के लोगों के बीच जैसी हिन्दी को सम्पर्क भाषा बनना चाहिए, वैसी 'बसन्ती' में है। उपन्यास की भाषा कथा के धीर प्रवाह में एकदम सांस चलती है। भाषा कहीं चित्रात्मक है, तो कहीं व्यंग्यात्मक, तो कहीं विनोदपूर्ण और कहीं संकेतिक।''[3]

1- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 108

2- तमस - भीष्म साहनी - पृ0 268

3- आलोचना - 2 जिजीविषा और व्यवस्था का टकराव - धीरेन्द्र ठाकुर-पृ0 66

मजदूर वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा (गालियाँ देना इत्यादि) का भी लेखक ने निःसंकोच, बेलाग प्रयोग किया है।

राजस्थानी शब्दों का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग हुआ है - जैसे — खिमा, आपणे, लुगाई, हिलोर, पगड़, घुलास, अँगरखा इत्यादि।

मुहावरों का सटीक व प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। उर्दू, बोलचाल की भाषा हिन्दी, पंजाबी और तद्भव शब्दों के बीच कहीं-कहीं तत्सम शब्दों (अर्द्धांगिनी, नूपुर इत्यादि) का भी प्रयोग हुआ है।

मध्यवर्ग द्वारा प्रयुक्त अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रसंगानुकूल लेखक ने प्रयोग किया है। जैसे टेलीविज़न, टान्टा, रेडियो, पार्क, पुलिस, डार्लिंग इत्यादि।

भीष्म जी की भाषा उत्तरोत्तर सशक्त व प्रौढ़ होती गई है। भाषा में कसाव आता गया है। सटीक एवं सधी हुई भाषा का प्रयोग करने में वह माहिर है। कस्ती में उनकी भाषा में व्यंग्यात्मकता एवं काव्यात्मकता का गुण भी अन्य उपन्यासों की तरह दृष्टिगोचर हुआ है।

जीवन की वास्तविकताओं को उजागर करने में भीष्म साहनी की भाषागत प्रस्तुति प्रभावक अत्यन्त सार्थक है। वस्तुतः भीष्म साहनी के उपन्यासों की भाषा आम बोलचाल की एवं समाज से जुड़ी हुई भाषा है और सामाजिक यथार्थ की प्रस्तुति में पूर्णतः सार्थक है।

—

उपसंहार

सामाजिक परिवेशगत समस्याओं को अपनी कृतियों में उभार कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने वाले साहित्यकार भीष्म साहनी साठोत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

भीष्म साहनी की रचनाओं में आधुनिक भारतीय समाज के अनेक पक्षों के दिग्दर्शन होते हैं। प्रेमचंद की हिन्दी कथा साहित्य में सोद्देश्यता एवं सामाजिक यथार्थ के अंकन की परंपरा को और अधिक परिपुष्ट व समृद्ध बनाने में भीष्म साहनी ने अपना पूर्ण योगदान दिया है। वे उस विचारधारा को प्रश्रय देते हैं जो सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों को समृद्ध करने में सहायक होती है। भीष्म साहनी ने आम जीवन के साधारण चरित्रों को समाज से जोड़कर अपनी कृतियों में प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज में व्याप्त कुव्यवस्था, परंपरागत रूढ़ियों और अमानवीय तत्वों पर तीव्र व्यंग्य और इन सब के कारण सामान्य जन-जीवन की समस्याओं, विडम्बनाओं एवं विषमताओं का विवेचन-विश्लेषण, भीष्म साहनी ने अपने कथा-साहित्य में व्यक्त किया है।

भीष्म साहनी समाज में व्यक्ति की स्थिति और समाज में व्याप्त असंगतियों को पाठकों के समक्ष रखना लेखक का दायित्व मानते हैं। उन्होंने स्वयं भी इस दायित्व को सफलतापूर्वक निभाया है। मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग का अत्यन्त वास्तविक एवं स्वाभाविक चित्रांकन उनकी कृतियों में हुआ है। इन वर्गों में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ व्यक्ति के स्वाभाविक विकास में विकट बाधा के रूप में उपस्थित होती है। व्यक्ति के विवेक को कुण्ठित कर अमानवीय कृत्यों के लिए प्रोत्साहित करने वाली ये समस्याएँ समग्र मानव-जाति के लिए

हानिकारक सिद्ध होती है और विडम्बनाओं की सृष्टि करती है । साम्प्रदायिकता धार्मिक जड़ता, रूढ़ियों के प्रति अंधविश्वास, छुआछूत, ऊँच-नीच व भेद-भाव की नीति, वर्ग-संघर्ष, आर्थिक, विभिन्नता, नारी समाज का निरन्तर शोषण इत्यादि, ये समस्याएं आज भारतीय समाज को ही नहीं अपितु विश्व के अधिकांश भागों में अपना कुप्रभाव डाल रही हैं ।

भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं को पाठकों के समक्ष रखा है । उनके चारों उपन्यासों में भारतीय जन-मानस और परिवेश का व्यापक एवं वास्तविक चित्रण हुआ है ।

भीष्म जी ने पहले उपन्यास 'झरोखे' में बाल्यकाल के संस्मरणों का ब्योरा दिया है । परिवार से मिले संस्कार किस प्रकार बच्चे के व्यक्तित्व और संवेदन को प्रभावित एवं परिपुष्ट करते हैं, इसका उल्लेख 'झरोखे' में हुआ है । यह उपन्यास बाल मनोविज्ञान का एक सशक्त उदाहरण माना जा सकता है । भीष्म साहनी ने उपन्यास में उन सभी परंपरागत संस्कारों एवं नैतिकतापूर्ण निष्ठाओं की समीक्षा की है, जिनके द्वारा बच्चा प्रभावित तो होता ही है साथ ही जीवन के लक्ष्य को उन्हीं 'झरोखों' के माध्यम से देखता चलता है । किसी भी प्रकार की संकीर्णता बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण को कुण्ठित करती है । बच्चे के पूर्ण विकसित होने में बाधक सिद्ध होती है । धार्मिक और नैतिक वैचारिक संकीर्णता से बच्चा हीन-भावनाग्रस्त और कुण्ठाओं से घिरा रहता है, उसका व्यक्तित्व पूर्ण विकसित नहीं हो पाता ।

भीष्म साहनी ने सन् 1920 के आस-पास तथा उसके पश्चात् के समय में भारतीय परिवेश और तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक जड़ता व कुरीतियों में जकड़े एक परिवार की स्थिति का स्वाभाविक वर्णन इस

उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है । इसी दौरान आर्य-समाज में अतिवादी प्रवृत्तियों के आगमन से उसमें अव्यवस्था व धर्म के नाम पर भ्रष्टाचार पनपने लगा था । भारतीय समाज में व पारिवारिक संबंधों में आ रहे परिवर्तन को भी लेखक ने 'झरोखे' में दर्शाया है कि कैसे एक ही छत के नीचे रहने वाले लोगों के जीवन लक्ष्य व विचार भिन्न-भिन्न होने लगते हैं और रागात्मक संबंधों का स्थान धीरे-धीरे बौद्धिकता लेने लगती है । यह परिवर्तन युगानुकूल हो रहे सामाजिक मूल्यों के बदलाव का परिणाम था । पाश्चात्य शिक्षा एवं प्रगतिशील विचारों का प्रभाव युवा पीढ़ी पर पड़ने लगा था । पुरानी तथा नयी पीढ़ी के बीच टकराव व दूरी बढ़ रही थी । किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों में मानव अपने आप को उन्हीं के अनुरूप ढाल कर जीवन पथ पर अग्रसर होता रहता है । 'झरोखे' में भीष्म साहनी ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से भारतीय मध्यवर्ग की छोटी-छोटी समस्याओं और उन प्रसंगों का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है, अधिकांशतः जो हर मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में घटित होते हैं ।

'कड़ियाँ' उपन्यास में भीष्म साहनी ने मध्यम-वर्गीय दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न हो रही असंगतियों का उल्लेख करते हुए विषम परिस्थितियों में पुरुष एवं स्त्री वर्ग की मानसिक दशा का वर्णन किया है । उपन्यास का नायक महेन्द्र अपनी दुविधा एवं मानसिक द्वन्द्व के कारण अपने जीवन में अव्यवस्था उत्पन्न कर लेता है । महेन्द्र और प्रमिला के दाम्पत्य जीवन में सुधमा नाम की एक अन्य स्त्री के प्रवेश के साथ ही महेन्द्र की डावाँडोल मनःस्थिति के कारण दोनों पति-पत्नी के बीच संबंध-विच्छेद की स्थिति हो जाती है । महेन्द्र अपने संस्कारों से हटकर आधुनिक परिवेश में स्वच्छन्दता से विचरण करना चाहता है । किन्तु न तो उसके संस्कार उसका पीछा छोड़ते हैं और न ही आधुनिक परिवेश में वह अपने को ढाल पाता है । उसके मन में

सदैव अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है और यह जब उसके व्यवहारिक जीवन में प्रकट होता है तो महेन्द्र का परिवार बिखर कर रह जाता है । भीष्म साहनी ने पुरुष का स्त्री के प्रति रवैया और पुरुष प्रधान समाज में पुरुष आश्रित स्त्री व आत्म-निर्भर नौकरी पेशा स्त्री की स्थिति का यथार्थ अंकन इस उपन्यास में किया है । परंपरागत विचारों को लेकर चलने वाले नारंग साहब और प्रमिला के शोषण की स्थिति व बदलते सामाजिक मूल्यों से सम-झौता करने वाले इन लोगों की मनःस्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है । माता-पिता के संबंध-विच्छेद से उनकी संतान पर क्या बुरे प्रभाव पड़ते हैं, इसका संकेत भी पप्पू के प्रसंग में लेखक ने किया है । इसके साथ ही भीष्म जी ने आज के युग में अधिक मात्रा में बढ़ रहे संबंध-विच्छेद और असफल दाम्पत्य से प्रभावित व्यक्तियों के मन में उत्पन्न हो रहे वैवाहिक संस्थाओं के प्रति अविश्वास की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है ।

भीष्म साहनी के सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'तमस' में मानवता को आहत करने वाली विषम समस्या, साम्प्रदायिकता, का वर्णन किया गया है । साम्प्रदायिकता देश-विभाजन के मुख्य कारणों में एक मानी जाती है । देश-विभाजन की पूर्ववेला में घटित अमानवीय घटनाओं को कथानक के रूप में लिया गया है । विभाजन-काल पर तटस्थ दृष्टि से लिखे गए साहित्य में यह उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखता है ।

भीष्म जी ने सांकेतिक ढंग से उपन्यास में यह बताने की चेष्टा की है कि शासक-वर्ग और राजनैतिक एवं धार्मिक संगठनों द्वारा अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु साम्प्रदायिकता का प्रयोग मानवता के अहित के लिए किस प्रकार किया करते हैं । इस प्रकार के अमानवीय कृत्य एक वर्ग-विशेष अपने अधिकारों की रक्षा हेतु सदा से ही करता आया है । साम्प्रदायिकता की समस्या से

मानव सदियों से त्रस्त रहा है और अभी न जाने कितनी शताब्दियों तक यह समस्या समाज में अपना कुप्रभाव डालती रहेगी ।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीय भावना को दबाने का जो प्रयास तत्कालीक शासक अंग्रेजों ने किये, वे अत्यन्त अमानवीय और क्रूर थे । साम्प्रदायिकता की भावना को हिन्दू-मुस्लिम दोनों पक्षों में बढ़ावा कर भारतीयों में उत्पन्न राष्ट्रीय भावना को नष्ट करने का प्रयास किया गया । धार्मिक संकीर्णता से उत्पन्न यह रोग बढ़ता गया और हजारों की संख्या में निरीह, असहाय लोगों की हत्या का कारण बना । इसका मार्मिक वर्णन 'तमस' में लेखक ने किया है ।

देश-विभाजन से पूर्व देश की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को भी उपन्यास में पूर्ण तटस्थता के साथ प्रस्तुत किया गया है । राजनैतिक संगठनों की गति-विधि का तत्कालीक परिस्थितियों में जो भूमिका रही उसका अंकन भीष्म साहनी ने ऐतिहासिक सदर्भों को दृष्टि में रख कर किया है । हिन्दू-मुस्लिम के धार्मिक विचारों के वैषम्य व दोनों सम्प्रदायों से उत्पन्न द्वन्द्व विभाजन का मुख्य कारण रहा । 'तमस' में पाँच दिनों के कथानक में विभाजन से पूर्व हुए हत्या-काण्ड व लूटपाट का लेखक ने पूर्ण स्वाभाविकता से वर्णन किया है । स्नेह, मित्रता, सद्भाव और विश्वास किस प्रकार विकट परिस्थितियों में घृणा, शत्रुता, दुर्भाव एवं अविश्वास में परिवर्तित हो जाते हैं, इसका उल्लेख 'तमस' में हुआ है ।

'बसंती' मजदूर वर्ग की समस्याओं पर लिखा गया उपन्यास है । वर्ग-संघर्ष और नारी जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थिति का भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में वर्णन किया है । आज की जागृत नारी स्वयं को समाज की कुरीतियों व रूढ़ियों के बन्धनों से मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील है । अपने अधिकारों के

प्रति सचेत एवं पुरुष-प्रधान समाज के शोषण के प्रति आक्रोश व्यक्त करने वाली स्त्री जीवन-पर्यन्त संघर्षरत रहती है । वह आत्मनिर्भर होकर भी मानवीय संवेदना और स्वतन्त्र जीवन जीने के लिए छटपटाती रहती है । बसन्ती मजदूर-वर्ग से संबंधित युवती है और अपने दो हाथों की कमाई पर गर्व महसूस करती है ।

भीष्म साहनी ने बसन्ती और उसकी बस्ती की विडम्बनापूर्ण स्थिति को इस उपन्यास के कथानक के रूप में लिया है । दिल्ली जैसे महानगर में अनाधिकृत रूप से बसी बस्तियों का बसना व उजड़ना तथा उनमें रहने वाले मजदूर वर्ग की समस्याओं का उल्लेख लेखक ने अत्यन्त स्वाभाविकता-पूर्वक किया है । इसी वर्ग की युवती बसंती के जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थितियों एवं मानसिक व शारीरिक शोषण के बावजूद तीव्र जिजीविषा लेकर चलती है । अपनी अनूठी प्रकृति के कारण प्रत्येक कठिनाई को मुस्कराते हुए सहती है ।

भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में अनमेल विवाह, स्त्री का पुरुष वर्ग एवं समाज द्वारा शोषण तथा निम्न एवं मध्यवर्ग की मानसिकता का यथार्थपूर्ण चित्रांकन प्रस्तुत किया गया है ।

भीष्म साहनी ने अपने चारों उपन्यासों में भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं और विषमताओं का अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक भाषा में वर्णन किया है । भीष्म जी की भाषा सधी हुई तो है ही, साथ ही व्यंजना से भी परिपूर्ण है । छोटे-छोटे चुस्त वाक्यों के प्रयोग द्वारा अर्थपूर्ण प्रसंगों को पाठकों के समक्ष रखने में लेखक सफल हुआ है । भाषा कहीं भी क्लिष्ट या कृत्रिम नहीं बन पड़ी । पंजाबी, उर्दू एवं अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग से, पंजाबी व मुहावरों से भाषा में रोचकता बढ़ी है । पंजाबी शब्दों, गीतों

अथवा लोकोक्तियों का प्रसंगानुकूल प्रयोग हुआ है ।

भीष्म साहनी अपने विचारों को एक चित्रकार की तरह चित्रित करने की कला में सिद्धहस्त तो हैं, साथ ही उनकी कहानी कहने का अन्दाज़ भी अत्यन्त रोचक एवं निराला है । भारतीय मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग का साक्षात्कार इनके कथा-साहित्य में किया जा सकता है ।

वस्तुतः भीष्म साहनी के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का अंकन जिस कलात्मक ढंग से हुआ है वह लेखक की विशिष्टता को दर्शाता है । प्रेमचंद की परंपरा को और अधिक समृद्ध करने में भीष्म साहनी का योगदान साठोत्तरी उपन्यासकारों में महत्वपूर्ण रहा है ।

अन्त में परिशिष्ट में दिये गए 'साक्षात्कार' में भीष्म साहनी के विचारों को उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया गया है । इसमें लेखक के विचार उनकी रचनाओं के बारे में स्पष्ट हुए हैं ।

परिशिष्ट

साक्षात्कार

1- आपने कब से लिखना आरम्भ किया ?

—''नियमित रूप से मैंने देश के बँटवारे के बाद लिखना शुरू किया । यों इससे पहले छिट-पुट कहानियाँ, लेख आदि छपते रहे । मैंने पहली कहानी हाई स्कूल के दिनों में लिखी, जो कालिज पत्रिका में छपी थी । पर मैं अपनी पहली कहानी 'नीली आँखें' को मानता हूँ जो लगभग 1944 में 'हंस' में छपी थी, जब श्री अमृतराय उसके सम्पादक थे ।''

2- कहानी के क्षेत्र से उपन्यास की ओर अग्रसर होने में किन-किन कारणों ने आपको प्रभावित किया ?

— उपन्यास का कैनवास बड़ा होता है । कहानी लिखने वाला व्यक्ति कभी-न-कभी ज़रूर उपन्यास-विधा की ओर आकृष्ट होता है, जब उसे किसी विषय अथवा स्थिति पर विस्तार से लिखने की प्रेरणा मिलती है ।

3- क्या कहानी में आप उन सब बातों को नहीं कह पाये जो कहना चाहते थे, इसलिए उपन्यास का क्षेत्र चुना ?

— मेरा पहला उपन्यास 'झरोखे' बचपन के अनुभवों से सम्बद्ध है । बचपन के माहौल, बाल-सुलभ कुतूहल, बचपन के अनुभव, अपने से बड़े लोगों के प्रति दृष्टि आदि-आदि, बड़े कैनवास की माँग करते हैं जो कहानी विधा नहीं जुटा पाती । इसी भाँति अन्य उपन्यासों में भी किसी स्थिति अथवा समस्या को अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने का प्रयास है ।

4- आपके चारों उपन्यासों में 'तमस' सामाजिकता की दृष्टि से बाकी तीन से भिन्न है। क्या इसका कारण देश-विभाजन था या कुछ और ?

- केवल देश-विभाजन नहीं, साम्प्रदायिकता की समस्या जो देश के बंटवारे के बाद भी हल नहीं हो पायी।

5- 'झरोखे', 'कड़ियाँ', और 'बसन्ती' से 'तमस' को क्या आप भी भिन्न मानते हैं ? उस भिन्नता का सामाजिक आधार कृपया बतायें ?

- चारों उपन्यास अलग-अलग तरह के हैं। 'तमस' की बनावट अन्य उपन्यासों से भिन्न है। उस में कोई केन्द्रीय पात्र नहीं, न ही कोई छोटा या बड़ा पात्र है। एक स्थिति विशेष को लेकर, उसी से जुड़ी घटनाएँ, मानवीय संबंध, घात-प्रतिघात, व्यापक सामाजिक स्तर पर दिखाने की कोशिश है।

6- यशपाल के 'झूठा-सच' और 'तमस' में उपन्यासकार की दृष्टि से आप क्या भिन्नता देखते हैं ?

- 'झूठा-सच' का कलेवर और कैनवास बड़े हैं। वह ऐतिहासिक घटनाक्रम के साथ-साथ चलता है। 'तमस' केवल पाँच दिनों की कहानी है। समस्यामूलक तो दोनों है, पर 'तमस' बंटवारे की पृष्ठभूमि में एक साम्प्रदायिक विस्फोट, और उससे पैदा होने वाली प्रतिक्रियाओं - मानसिक प्रतिक्रियाओं तथा आपसी संबंधों में होने वाले बदलावों आदि पर केन्द्रित है। साथ ही साथ सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों को सामने लाने की कोशिश है।

7- क्या 'तमस' में आपने राष्ट्रीय भावना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ?

— बँटवारे की पूर्वकथा, आज़ादी की भी पूर्वकथा थी। उस साम्प्रदायिक विस्फोट ने राष्ट्रीय एकता पर ही आघात किया था। उपन्यास की तह में राष्ट्रीय भावना ही उसका आधार बनती है। साम्प्रदायिकता बुरी है क्योंकि वह राष्ट्रीयता के ही विकास में बाधक बनती है।

8- सामाजिक यथार्थ के चित्रण में किन उपन्यासकारों ने एवं औपन्यासिक कृतियों ने आपको प्रभावित किया ?

— इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। लिखने वाला एक नहीं अनेक लेखकों तथा उनकी कृतियों से प्रभावित होता है।

9- उपन्यासकार की दृष्टि से सामाजिक यथार्थ और सामाजिकता में कितना अन्तर होना चाहिए ?

— जितना अधिक उपन्यासकार की दृष्टि में सामाजिकता होगी उतना ही प्रामाणिक उसका सामाजिक यथार्थ होगा। सामाजिकता का संबंध लेखक की दृष्टि और सूझ से है, उसके अनुरूप ही वह सामाजिक यथार्थ का चित्रण कर सकता है।

10- सामाजिक रूढ़ियों के मानव भारतीय परिवेश में कहाँ तक प्रश्न कर सकता है ?

— रूढ़ि शब्द से ही हमारा अभिप्राय ऐसी प्रथाओं आदि से होता है जो रूढ़ हो चुकी हैं, अपनी सार्थकता खो चुकी हैं, असंगत हो चुकी हैं। जो रूढ़ हो चुका है, उसे कोई कैसे प्रश्न कर सकता है, उसे प्रश्न करने में क्या तुक है। यदि आपने 'रूढ़ि' के स्थान पर 'परंपरा' कहा होता तो बात दूसरी थी। हमारी परंपरा में बहुत कुछ ऐसा है, जिसे हम प्रश्न करना चाहते हैं, जैसे मानवीयता, जीवन-प्रेम, नैतिकमूल्य आदि।

11- आपकी कृतियों से ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी एक वर्ग से प्रभावित होकर वर्ग-विशेष में आपने रुचि दिखाई । यह कहाँ तक सच है ?

— लेखक उन्हीं लोगों के बारे में अधिक आत्मविश्वास के साथ लिख सकता है जिन के जीवन से उसकी अच्छी जानकारी हो ।

12- भारतीय नारी की वर्तमान परिस्थिति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति आपके क्या विचार हैं ?

— मैं नारी को हमारे पारिवारिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का धुरा मानता हूँ । उसकी भूमिका को महत्वपूर्ण मानता हूँ । आज के संक्रमण काल में भारतीय नारी अपनी स्थिति के बारे में अधिक सचेत हो रही है, अपनी क्षमताओं का विकास करना चाहती है, और उन रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों के चंगुल से निकल आना चाहती है, जिन्होंने उसकी स्थिति को दयनीय बना दिया था ।

13- नारी के किस रूप को वर्तमान परिस्थितियों में आप सही समझते हैं तथा वसन्ती की स्थिति को क्या केवल आप दुर्भाग्य या परिस्थिति-चक्र का परिणाम समझते हैं ?

— 'वसन्ती' अपने तरीके से उस चंगुल से निकलना चाहती है । वह बूढ़े व्यक्ति के साथ विवाह नहीं करना चाहती, पहले भाग निकलती है और परिस्थितियोंवश उसके साथ बाँध दिये जाने पर, मौका मिलते ही फिर भाग निकलती है । वह अपनी मेहनत पर जीना चाहती है, कठिन से कठिन स्थितियों में भी उसके हृदय की मानवीयता बनी रहती है और जीवन के प्रति उसका उत्साह भी ।

14- धार्मिक और राजनैतिक प्रदूषण साम्प्रदायिकता को पनपाता है और मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण इन प्रभावों से मुक्त नहीं हो पाता । 'तमस' में साम्प्रदायिक विषैलेपन का जो चित्रण आपने किया है, उसमें भी

उपरोक्त कारण ही स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इस बारे में आपके क्या विचार हैं ?

—'तमस' में अंग्रेज़ सरकार, भारतीयों के बीच पाये जाने वाले धार्मिक भेदभाव से लाभ उठाकर साम्प्रदायिक दंगे करवा देती है। 'तमस' के परिप्रेक्ष्य में अंग्रेजी सरकार की भूमिका को ध्यान में रखना जरूरी है।

15- भारतीय समाज की रूढ़िवादिता को ध्यान में रखते हुए सामाजिक मूल्यों में क्या परिवर्तन आवश्यक है ?

— समूचा भारतीय समाज रूढ़िवादी नहीं है। रूढ़ियों के विरुद्ध बहुत लोग आवाज़ उठाते रहे हैं और संघर्ष भी करते रहे हैं। परन्तु वर्तमान काल में रूढ़ियों से मुक्त होना नितान्त आवश्यक है ताकि देश और समाज की उन्नति हो सके; धर्मांधता, जातपात, नारी की हीन स्थिति, रूढ़िगत रीति-रिवाज़ आदि-आदि।

16- भारत-विभाजन की विभीषिका का जो चित्रण आपने किया, क्या उससे भयंकर सामाजिक स्थिति विभाजन के उपरान्त नहीं है और यथार्थवादी लेखक उसके प्रति कितना जागरूक है ?

— साम्प्रदायिकता की समस्या बराबर बनी हुई है। इसे दूर करने के लिए इसके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारणों को दूर करना ज़रूरी है। लेखकगण विशेषकर समाजोन्मुख लेखक इस समस्या के प्रति सचेत हैं, भले ही इस विषय को लेकर कम लिखा गया हो। विरले ही कोई लेखक साम्प्रदायिक दृष्टि से लिखता हो।

17- उपन्यासकार की दृष्टि से यथार्थवादी चित्रण की क्या सीमा होनी चाहिए एवं क्या स्वरूप होना चाहिए ?

— लिखते समय कोई भी लेखक किसी 'वाद' के प्रभावाधीन नहीं

लिखता, वह सीधा जीवन से साक्षात करता है । पर उसके रचनात्मक व्यक्तित्व का गठन, उसके विचारों, मान्यताओं द्वारा वैसे ही होता है जैसे उसके संस्कारों, अनुभवों, पठन-पाठन आदि द्वारा । लिखते समय उसका समूचा रचनात्मक व्यक्तित्व सक्रिय होता है, उसका यथार्थबोध, उसकी कल्पना, उसका संवेदन आदि । वही उसके लिये यथार्थ की 'सीमाएं' तथा स्वरूप आदि निर्धारित करता है । कोई नपा-तुला नियम नहीं ।

18- उपन्यासकार को राजनीति से कहाँ तक प्रभावित होना चाहिए ?

— कोई भी लेखक जीवन से कटकर नहीं रह सकता । न ही वह जीवन का मात्र दर्शक बन कर रह सकता है । अपने परिवेश और उसके सुख-दुख और समस्याओं से भी कट कर नहीं रह सकता । सामाजिक जीवन में राजनीति की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । राजनीति की भूमिका को उसके व्यापक अर्थ में लें, मात्र राजनीतिक दलों की भूमिका के अर्थ में नहीं ।

19- उपन्यासकार क्या अपनी राजनैतिक मान्यताओं को अपनी रचना में प्रश्रय देकर साहित्यिक सत्य का निर्माण कर सकता है ?

— साम्प्रदायिकता का सवाल मात्र एक सामाजिक प्रश्न नहीं है, किसी स्तर पर वह राजनैतिक प्रश्न भी बन जाता है । इसी भांति जातिवाद का सवाल, धर्मांधता का सवाल, गरीबी का सवाल, युद्ध और शांति का सवाल आदि आदि । राजनैतिक मान्यताएं जहाँ मानवीय हितों से जुड़ती हैं, जहाँ वे समाज की उन्नति और विकास से जुड़ती हैं, वहाँ साहित्यिक सत्य के निर्माण में लेखक के लिये निश्चय ही सहायक होती हैं ।-

---

परिशिष्ट-II

अनुक्रमणिका

शोध-प्रबंध में विवेचित उपन्यासों की सूची

1- 'झरोखे' - भीष्म साहनी- (1967)

2- 'कड़ियां'- भीष्म साहनी (1970)

3- 'तमस' - भीष्म साहनी (1973)

4- 'बसंती'- भीष्म साहनी (1980)

'सन्दर्भ ग्रन्थ सूची'

1- डा0 इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख (1975) लिपि प्रकाशन - दिल्ली-5।

2- डा0 उर्मिला भटनागर - हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य-चित्रण (1981) अर्चना प्रकाशन - कोटा (राजस्थान)

3- डा0 एस0 एम0 चाँद - साम्प्रदायिकता : समस्या और समाधान (1977) राष्ट्रीय एकता प्रकाशन - ब्यावर (राजस्थान)

4- कालिन्स (लैरी तथा लैपियर (डामिनिक) अनु0 मनहर चौहान - आधीरात की आज़ादी (1976) गाण्डीव प्रकाशन - अहमदाबाद

5- डा0 कुँवर पाल सिंह - हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना (1976) पाण्डुलिपि प्रकाशन - दिल्ली

6- डा0 चन्द्रभानु सोनवणे सूर्यनारायण रणसुभे व ओमप्रकाश शैलीकार - हिन्दी उपन्यास विविध आयाम (1977) पुस्तक संस्थान - कानपुर

7- श्री जगदानन्द पाण्डेय - बाल मनोविज्ञान (1978) तारा पब्लिकेशन्स - कमच्छा - वाराणसी

8- जैनेन्द्र - साहित्य का श्रेय और प्रेय (1953) पूर्वोदय प्रकाशन - दिल्ली

9- डा0 नरेन्द्र मोहन - आधुनिक हिन्दी उपन्यास (1975) दि मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड - दिल्ली

10-डा0 भीष्म साहनी व अन्य (सम्पा0) - आधुनिक हिन्दी उपन्यास (1976) प्राचार्य, जाकिर हुसैन कालिज - दिल्ली

11- डा0 मंजुलता सिंह - हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग (1971)
आर्य बुक डिपो - नई दिल्ली

12- मेरी चैडविक (एस0आर0. ऐन0) - बचपन - (Chapters about child-hood)
(अनु0-अमरनाथ विद्यालंकार) राजकमल प्रकाशन - दिल्ली

13- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं02029वि0)
नागरी प्रचारिणी सभा - वाराणसी

14- डा0 रामविलास शर्मा - भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद
खण्ड - I+ II (1982)
राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली

15- श्री रामनाथ महतो - साम्प्रदायिकता की समस्या और राही मासूम रज़ा के उपन्यास (1980)
जवाहरलाल नेहरू लाइब्रेरी में उपलब्ध

16- राजेश्वर सक्सेना व प्रताप ठाकुर - भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना (1982)
वाणी प्रकाशन - दिल्ली-7

17- डा0 रमेश तिवारी - हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन (1972) -
रचना प्रकाशन - इलाहाबाद-1

18- रैल्फ फाक्स - उपन्यास और लोकजीवन (1979)
(अनु0 नरोत्तम नागर) पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा0) लिमिटेड -
भूमिका-डा0रामविलास शर्मा नई दिल्ली

19- डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - हिन्दी साहित्य का इतिहास (1956)
हिन्दी साहित्य परिषद् - इलाहाबाद

20- डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - हिन्दी साहित्य का इतिहास (1976)
लोक भारती प्रकाशन - इलाहाबाद

डॉ0 चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - उपन्यास : स्थिति और गति
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

21- डा० विमला सहस्त्रबुद्धे - हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (1974)
पुस्तक संस्थान - कानपुर

22- डा० विमला शर्मा - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप (1982)
संगम प्रकाशन - इलाहाबाद

23- डा० विवेकीराय - हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ (1983)
राजीव प्रकाशन - इलाहाबाद

24- क्षमा गोस्वामी - नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास (1981)
जयश्री प्रकाशन - दिल्ली

25- डा० स्वर्णलता - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की समाज-शास्त्रीय पृष्ठभूमि (1975)
विवेक पब्लिशिंग हाउस - जयपुर

26- डा० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय ~~संजय प्रकाशन~~ - वाराणसी - 1965

27 - राजेन्द्र यादव - अठारह उपन्यास
अक्षर प्रकाशन - दिल्ली

English

1_ B Von Haller Gilmer- - Psychology (1970)
Harper and Row Publishers -New York

2- Burger,E.W. and Lock, H.T. - The Family (1950)
- American Book Co. - New York

3- Fowler & Roger - Linguistic and the Novel (1977)
Methuen & Co. Ltd. -London

पत्रिकाएँ

1- आलोचना - 1973 , 1983

2- धर्मयुग - 1974

3- सविता - 1983